शीराज़ा

हिन्दी

जे. एण्ड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

द्वैमासिक

शीराज़ा हिन्दी

अप्रैल–जुलाई, 2003

कहानी विशेषांक

(संदर्भ : जम्मू–कश्मीर)

प्रमुख संपादक

बलवंत ठाकुर

संपादक

श्याम लाल रैणा

जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू – 180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 April-July, 2003
(Hindi)

वर्ष : 39 अंक : 1-2 कुल अंक : 162, 163

Editor-in-Chief
BALWANT THAKUR
Editor
SHYAM LAL RAINA

J&K ACADEMY OF ART CULTURE & LANGUAGES

❖ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं इनसे अकैडमी या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेज़िज, जम्मू-180 001

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चन्द, जालन्धर-144 004
फोन : 0181-5087310

संपर्क : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू एंड कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

दूरभाष : 2577643, 2579576

मूल्य : यह अंक : 20 रुपये; वार्षिक : 50 रुपये

संपादकीय

आज़ादी से पहले जम्मू-कश्मीर में हिन्दी कहानी की कहानी राज्य से प्रकाशित होने वाली हिन्दी की पत्रिकाओं (भारती, उषा, वसुधा, गुलाब आदि) से शुरू होती है। 7 मार्च 1945 में 'गुलाब' पत्रिका का एक कहानी अंक प्रकाशित हुआ इसमें पांच कहानियां संकलित की गई। आज़ादी के बाद 1960 तक कोई कहानी संग्रह प्रकाश में नहीं आया। सातवें दशक में हिन्दी कहानी में नई प्रतिभाएं उभरने लगीं। कुछ कहानीकार प्रदेश की सीमा लांघकर राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होना शुरू हुए। आठवें और नवें दशक में अनेक कहानी संग्रह और संकलन भी प्रकाशित हुए। जम्मू-कश्मीर के कहानीकारों ने जीवन को अपनी सम्पूर्ण विविधता में रूपायित करने के लिए अभिव्यक्ति के सही कोण की तलाश करते हुए शिल्प के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग किये हैं। प्रदेश की आज की कहानी ऐसे समय की कहानी है जब झंझावात के साथ ओले भी पड़ रहे हों, सर छुपाने के लिए न कोई छतनार वृक्ष हो और न कोई ठोस छत्त। प्रस्तुत कहानी विशेषांक में हमने जम्मू-कश्मीर के कहानीकारों को सम्मिलित किया है ताकि सामयिक कहानी का स्वरूप सामने आ सके।

जिन कहानीकारों ने हमें सहयोग दिया है हम उनका अकादमी की ओर से आभार प्रकट करते हैं।

सुधी पाठकों से निवेदन है कि अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराएँ।

–श्याम लाल रैणा

कहानी विशेषांक

अनुक्रम

			पृष्ठ संख्या
1.	बीजी-झील सांस ले रही है	: किरण बख्शी	1
2.	अतीत की फांस	: ओम गोस्वामी	10
3.	शोक	: अवतार कृष्ण राज़दान	20
4.	जंजीर	: जितेन ठाकुर	29
5.	मेरी पुंछ को क्या हो गया ?	: राज भल्ला	36
6.	बुजदिल	: दीदार सिंह	41
7.	टूटते अहसासों का कारवां	: अशोक जेरथ	46
8.	बाबू जी	: शिबन कृष्ण रैणा	55
9.	माई	: देशबन्धु डोगरा नूतन	58
10.	अस्थियों का सौदा	: महाराज कृष्ण संतोषी	71
11.	रिहाई	: अग्निशेखर	75
12.	मां-बहिनें	: चांद दीपिका	84
13.	अन्तिम अभिवादन	: यशा माथुर	90
14.	ढलान	: बलजीत सिंह रैणा	97
15.	फिरौती	: प्रवीण केसर	106
16.	प्रश्न	: बी० 'रमण'	109
17.	अपने-अपने पिंजरे	: नरेश कुमार 'उदास'	113
18.	महात्मा	: राजेश्वर सिंह 'राजू'	121
19.	हवेली	: संतोष सांगड़ा	126

बीजी–झील सांस ले रही है

❑ किरण बख्शी

करीब बारह वर्ष से मेरा काश्मीर जाना न हो सका था। मेरे लिए श्रीनगर शहर मन से दूर कभी नहीं हो पाया। हर पुरानी याद वहीं से जन्म लेती है और मुझे जाने पहचाने कमरों, गलियारों और बागों में भटकने के लिए छोड़ देती है। मैं मन ही मन अपने दोस्तों जानपहचान वालों और युनिवर्सटी के साथियों से बतियाती रहती हूँ और उनके हाल चाल पूछती रहती हूँ। कश्मीर तो खैर किसी भी सोच वाले के जहन से परे रह ही नहीं सकता। वह संचार माध्यमों के द्वारा हमारे जीवन से ऐसे जुड़ गया है कि सुबह नाश्ते की टेबुल से उसका चर्चा शुरू होता है और रात के खाने पर खत्म होता है। मेरे जैसों के लिए कभी-कभी वह नींद की दहलीज भी फलांग जाता है। आज अचानक जब किसी सरकारी काम से वहां जाने की संभावना बनी है तो मन बल्लियों उछल रहा है। एक उदास सी खुशी, एक भीगी सी उत्सुकता एक महीन सा डर मन को आंतकित किए है। वहां क्या क्या बदल गया होगा ? क्या नहीं होगा ? बस इसी को लेकर घबराहट है। अपनी सुरक्षा को लेकर तो ख़ैर कोई चिंता नहीं क्योंकि सरकारी काम से बहुत से लोग इकट्ठा जा रहे हैं, तो असुरक्षा की भावना इतनी तीव्र नहीं कि कोई फिक्र हो।

जम्मू से जहाज़ में बैठते ही ऐसा लग रहा है कि कोई सपना साकार होने वाला है। कैसा तो मन उत्सुक है वहां की हवा को भीतर भर लेने के लिए- वहां की माटी को सूंघने के लिए कि जहाज़ की रफ्तार भी धीमी दिखाई देती है। एयरहोस्टैस बहुत सी हिदायतें दे रही है, जिनमें एक यह भी है कि अगर किसी हादसे के कारण कूदना पड़े तो साईड की खिड़कियां खुल जाएंगी- कि अगर पानी में कूदना पड़े तो लाईफ-जैक्ट कुर्सी के नीचे से ली जा सकती है आदि। यह सुनते ही हल्की सी आशंका मन में जन्म लेती है कि कहीं कुछ हो गया तो...... हवाई हादसे तो भयानक होते हैं, पर दूसरे ही क्षण जब अपने साथियों को जैट एयरवैज़ की पत्रिकाएं जो बहुत ही सुंदर रंगों और मुलायम बढ़िया कागज़ में छपती हैं, उलटते पलटते देखती हूं तो उस महीन से डर का एहसास भी ख़त्म हो जाता है और एक मज़ाक सूझता है कि हादसा ही होना है तो हो जाए पर- वापसी पर श्रीनगर, डल और शंकराचार्य देखने के बाद। कुछ और भी तो है शायद जिसे पुनः जीवित करने की इच्छा है- कुछ पुराने सम्बन्ध कुछ भूले-बिसरे पल, सब फिर से जीने का मन है।

दो बज कर दस मिनट पर फ्लाईट श्रीनगर पहुंचती है। विमान से बाहर आ कर हवा को सूंघती हूँ। उसमें पहले सी ठडंक और ताज़गी नदारद है। मन दुःखी हो जाता है। विमान

के भीतर परिचारिका ने बताया था कि बाहर तापमान बत्तीस डिगरी है। जम्मू में तो 34 था। यहां के मौसम में यहां के हालात के अनुसार बदलाव आ रहा है। लोग ऐसा सोचते हैं। उन्हें जम्मू और श्रीनगर के तापमान में केवल दो डिग्री का अंतर रहस्यमय लगता है। आसपास एक अजीब सी उदासी छाई है। पेड़ न तो हरे हैं और न ही घने। हमें सरकारी बसें लिवाने आई हैं, सब लोग सवार होते हैं और खिड़की से बाहर झांकते हुए रास्ते में पड़ने वाले अपनी पहचान के पड़ावों को पहचानने की कोशिश करते हैं। कुछ-कुछ पहचान में आ रहा है और कुछ नया है। बारह वर्ष एक लम्बा अंतराल होता है किसी स्थान से दूर रहने के लिए। यह भी तो है कि जहां विघटन की प्रक्रिया इतनी तेज़ी से चल रही हो वहां सब कुछ पहले जैसा हो ऐसा कैसे हो सकता है ? बहुत सी नई ईमारतें भी बनी हैं, पर पुराने घरों पर जो घना मातम छाया है, उसे क़ोई भी महसूस कर सकता है। यह शहर उस नई नवेली दुल्हन की तरह लगता है जिसका श्रृंगार लुट चुका हो और जिसका मातम भी दबे-दबे मनाना हो।

होटल में सामान जमा कर मैं अपनी मित्र से कहती हूं, ''चलो बाहर चलें।'' ''इतनी जल्दी क्या है ? चाए तो पीने दो।'' ''नहीं मेरा यहां दम घुटता है। चाए बाहर ही कहीं पी लेंगे।'' मैं आदेश के से स्वर में बोलती हूं। वह मेरी तरफ ग़ौर से देखती है और रास्ते भर जो बातें हम करते रहे उनकी बिना पर कहती है- ''देखो यहां दीवारों के भीतर सांस आसानी से आती है। कम से कम डर तो नहीं कि अभी कोई आए और पूछे कहां से आए हो ? कहां जाओगे और दूसरी कई बातें। ऐसी बेमानी पूछताछ से कोफ़त होती है मुझे और जिस घुटन से बचना चाहती हो, वह दरअसल बाहर ज्यादा महसूस होगी।'' मैंने थोड़ी बेचारगी से उसकी तरफ देखा तो वह उठ बैठी। चाए का आर्डर कैन्सिल किया और नीचे बुलीवार्ड पर आ गईं। खुले आसमान में हल्के बादलों के टुकड़े जहां तहां छितराए हैं। सूरज का उजाला उनमें से छन कर ऐसे फैलता है जैसे पुराने लिहाफ की टूटी रूई को भेद कर रोशनी की बारीक सी लकीरें बाहर आएं। झील के किनारे चलते-चलते एक-एक हाऊस्वोट को ध्यान से देखती हूं और उनके नाम पढ़ती हूं। ऐसा मैं उस समय से कर रही हूं जब मैं हिज्जे करके शब्द पढ़ा करती थी। पर इस समय मेरी मजबूरी कोई दूसरी है। मैं सुबाहना के हाऊसवोट को ढूंढ रही हूं, जो कहीं दिखाई ही नहीं देता। असल में बहुत कम हाऊसवोट मेरे पहचान के हैं। टूरिस्ट न के बराबर आते हैं। इसलिए लोगों ने इस धन्धे को समेटना शुरू कर दिया है। नुक्सान और नहीं झेला जा सकता। इस आशा में भी दम नहीं कि निकट भविष्य में सब कुछ पहले जैसा हो जाएगा। ऐसा एक चाय वाले ने बताया था।

एक ठंडी सांस भीतर भर मैं सामने झील के वक्ष पर तैरते छोटे-छोटे शिकारों की लय और चप्पुओं की शुड़प-शुड़प की आवाज़ में खो जाती हूं। शिकारे नज़दीक आते हैं- एक भोला सा स्वर न्योता देता है और मैं बरबस उसके शिकारे की ओर बढ़ जाती हूं। शिकारा डोल जाता है तो झट से एक अधेड़ व्यक्ति मेरा हाथ थाम कर सीट पर बैठा देता है। बिल्कुल

सुबाहना की तरह। उसकी हाऊस वोट तक पहुंचाने के लिए उसका शिकारा हर समय घाट पर लगा रहता था और वह खुद हमें सैर कराते-कराते पूरी झील घूमा देता था। हम हर साल उसी के हाऊसबोट में ठहरते थे। उससे बड़ा अपनापन सा लगता था। हमारे हर चित्र में जो वहां खिंचते वह साथ रहता। कहां होगा वह, उसका हाऊस वोट 'जेनज़ट्यूलिप' खासा बड़ा था। उसकी रोशनियां रात के समय काली झील में छोटे-छोटे दियों की तरह दिप-दिप जला करती थी। हम उनके हिलते डोलते अक्स को पानी में हाथ डाल कर पकड़ने की कोशिश करते तो उनकी लौ ज़ोर-ज़ोर से हिलती फिर धीरे-धीरे रुकती, ऐसे लगता जैसे कोई संगीतकार अपने साज की लय घटा-बढ़ा रहा है।

कई शिकारे पास से निकल जाते हैं। मैं हर बार सुबाहना के बारे में पूछने से चूक जाती हूं। सामने से एक चील आकाश के बीचों-बीच उड़ती हुई हवा में सरसराहट पैदा करती हुई निकल जाती है। एक बारीक-सी शंका डरा जाती है। क्या मालूम सुबाहना हो भी या न। वह तो उस समय भी दाढ़ी रंगा करता था जब मैं यूनिवर्सिटी में थी। कितने बरस बीत गए पर अब भी उसके हाथ की नून चाय का स्वाद मुंह में रस घोलता है। उसका एक विकलांग लड़का भी तो था। भला उसका क्या होगा मैं एक बार फिर डल में लगे हाऊसवोट देखती हूं। 'जेनज़ट्यूलिप' कहीं भी दिखाई नहीं देता। उसके हाऊस वोट का नाम मुझे थोड़ा अजीब लगता था। जब मैंने पूछा कि उसने यह नाम क्यों रखा और रखा भी तो खाली ट्यूलिप क्यों न रखा- यह जैनज़ ट्यूलिप क्या हुआ ? तो उसने बड़ी ही टूटती हुई आवाज़ में एक कहानी सुनाई थी कि उसके यहां एक अंग्रेज़ साहब हर साल आया करता था। वह या तो पढ़ता रहता था, या खामोश पानियों को देखता रहता। अजीब उदास सा शख्स था। कभी बैठे-बैठे रो देता और फिर नज़रें चुराता रहता। एक बार न जाने किस पीनक में बोला ''सुबाहना जिसे हम चाहते हैं वह हमारे पास रहता क्यों नहीं। यह सब लोग मर कर किधर जाता- इनका कोई पता ठिकाना भी तो मालूम नहीं रहता।'' फिर उसने माऊथ आगर्न बजाना शुरू किया और आँख बंद कर बजाता रहा। जब थक गया तो बोला कि वह अपनी बीवी से बेहद प्यार करता था, जो एक दुर्घटना में चल बसी। वह उसे मरते हुए देख भी नहीं पाया था। अपने आप को लाख बार समझा चुका है कि वह मर चुकी है, पर दिल के किसी कोने में अभी भी एक उम्मीद बाकी है कि कभी भी किसी दिन वह उसके सामने जिन्दा खड़ी होगी। जेन बहुत प्यारी पत्नी थी, बहुत अच्छा दोस्त।

सुबाहना के लिए यह एक नयी जानकारी थी कि कोई मरी हुई बीवी के लिए ऐसे तड़पता है। भारी मन से उठा और जाकर सकीना से बोला यह अंग्रेज़ बड़ा दुःखी है। अपनी बीवी के ग़म में घुला जा रहा है। कसीना उसके सामने चाय का प्याला रखते हुए बोली थी, आज भी इस नस्ल के आदमी हैं जो बीवी की याद में घुलते हैं- हैरानी की बात है, वरना यहां तो चालीसवां होते ही निकाह को दौड़ते हैं। मर्द की ज़ात जो न करे वही कम।''

उन दिनों सुबाहना नया हाऊसबोट बना रहा था। उसने उस अंग्रेज़ साहिब से उसका नामकरण करने को कहा तो उन्होंने झट से कह दिया था– ट्यूलिप जेनज़ ट्यूलिप। शायद ट्यूलिप जेन का पसन्दिदा फूल रहा होगा।

मैं कई लोगों से इसकी बाबत पूछती हूं, तो एक कहता है सुबाहना तो चार साल पहले ही चल बसा। उसके जाने के बाद उसके लड़के और दामाद ने हाऊसबोट बेच दिया। उसने कैसी तो आसानी से कह दिया था सब कुछ। मन में छून से कुछ टूटता है। कश्मीर में विघटन बहुत से धरातल पर हुआ है। रिश्ते भी टूटे हैं और जान माल भी गया है। हाऊसबोट बिका है-- कैसे ? किन हालात में ? ज़रूर ज़मीन से उखड़ गए होंगे वह लोग। रात भर नींद उखड़ती रही। सुबाहना याद आता रहा– उदास हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ सुबाहना– डल के पानियों में डूबता-उतराता हुआ सुबाहना। दु:खों की आग में बर्फ की मानिंद पिघलता हुआ सुबाहना। तेजी से बदलते हालात को देखकर हैरान-परेशान सुबाहना।

सुबह अजनबी सी लगी। पहले तो कितनी चहल-पहल होती थी गलियों में दूध, रोटी, सब्ज़ी, गोश्त और नानवाई की पूरी दुकान टोकरी में उठाए हुए कान्दरे आपको हर जगह दिखाई देते थे। आज भी वह सब है, पर बुझा-बुझा सा। श्रीनगर की सुबह की संगीतमय ताज़गी जैसे कहीं गुम हो गई है। काम से निबट कर चश्मा-शाही मोड़ पर भुट्टे खाने का तय हुआ है। सुना है चश्माशाही जाना मना है। मेरी दोस्त सिक्योरिटी की गाड़ी मंगवा सकती है, पर मैं ही उस गाड़ी में जाना नहीं चाहती सुरक्षा के साथ। कोई अपनी चाही हुई जगहों से किसी की निगरानी में कैसे मिल सकता है। इन्हीं जगहों में मेरे मित्र मेरे साथ जुड़े, रिश्ते गहराए और एक बहुमूल्य धरोहर बन गए।

मोड़ पर झील के किनारे बैठे, डूबते सूरज को देखना अच्छा लगता है। देखते-देखते सुनहरी झील हल्की सुरमयी और फिर गहरी स्लेटी लगने लगती है। पहाड़ ऊँचे स्याह बुत से दिखाई देते हैं। ऐसा लगता है गहरी सोच में डूबे तपस्वी हो जैसे। मैं झील को आँख में भरना चाहती हूँ। पानी में दिप-दिप करते चिराग बहुत पास लगते हैं। मैं नए सिरे से झील के सिकुड़ते वजूद से परेशान होती हूं। मन फिर से उदास हो जाता है। हवा ज़रा तेज़ होती है तो लगता है झील भारी सांस ले रही है। हाँफ रही है। गहरी उदासी में डूबती हुई अपने भीतर के राज़ भीतर ही सोख लेती है झील। मैं सोचती हूं झील ख़ामोश है। नहीं, झील बेख़बर सो रही है– शायद मातम में है– झील मर रही है– कभी लगता है झील विस्फोट की स्थितियां तलाश रही है। बहुत-बहुत से हिसाब चुकता करना चाहती है झील। झील पगला गई है और पागलपन की शिद्धत में उसका रंग रूप उजड़ गया है। झील शायद कुछ बोलेगी। झील ज़रूर बोलेगी। झील हमारी मां जो है।

अगले दिन दोपहर बाद मैं लाल चौक की ओर निकल जाती हूं। कुछ पुराने परिचित

लोगों को तलाश करना चाहती हूं। मैं बहुत बार यह अनुभव कर चुकी हूं कि दूसरे शहर में जो थोड़े से भी परिचित होते हैं वे भी बड़े अपने से लगते हैं। श्रीनगर कैसे मेरे लिए दूसरा शहर हो गया और कब मैंने इसे सच भी मान लिया, मुझे इसका पता भी न चल पाया। हैरान होती हूं कि बहुत से लोग मुझे भूल चुके हैं। जब याद दिलाती हूं तो उदासीन से पहचानने की कोशिश करते हैं और रस्मी हाल चाल पूछते हैं। अच्छे जानने वाले भी पहले सी गर्मजोशी से नहीं मिलते। एक अजीब बदलाव है यहां। दु:ख सुख दोनों ही स्थितियों में लोग एक से स्थिर रहते हैं। हाँ जब कोई मरता है तो ज़रूर एक कोहराम उठता है जो धीरे-धीरे मरने वाले के साथ मिट्टी की परतों में दफ़न हो जाता है। उसके बाद जो बचता है वह है चुपचाप सुलगना और तड़पना। मरने वाले का मातम करना और पीछे छूट जाने वालों के दुख में सुबकना। एक दूसरे से नज़रें चुरा-चुरा कर आँखें पोंछना।

ख़ैर! ख़ालिद से अपने लाल बाज़ार वाले घर की बाबत पूछती हूं तो लगता है कि अभी कुछ बचा है, बुनियाद की एक महीन सी रेखा है जहां से इमारत उठाई जा सकती है। ख़ालिद से बातें करते-करते एक पुराना सम्बंध चुपके से मन की परतों से ऐसे झांकने लगता है जैसे बर्फ पिघल जाने के बाद हरी कच्ची दूब। हमारे घर के सामने तोषी का घर था। हम दोनों घन्टों वहां से नीचे बाज़ार की रौनक देखतीं और बातें करती रहतीं। उन दिनों हम हुमा और राशद की जासूसी किया करतीं और उन की बातें सुनती। राशद की मां उसके लिए अपने भाई की बेटी का रिश्ता मांगना चाहती थी, पर राशद था कि हुमा के लिए जान देने को तैयार। मैं सोच रही थी कि ऐसी ख़ालिस मुहब्बतें क्या आज भी इस धरती पर जन्म लेती होंगी। उनकी मुहब्बत बाद में क्या रंग लाई मालूम नहीं, पर मैं जानना भी नहीं चाहती। कहीं कुछ गलत हुआ तो यह भोला-सा प्रेम मेरे ज़हन में मर जाएगा और मैं यह होने देना नहीं चाहती।

तोषी, मेरी सहेली कहां होगी अब शायद पूना में। नई दिल्ली स्टेशन पर मिली थी एक बार। कहती थी भरपूर विस्थापन भोग रही है। मैं उसके लिए कुछ भी तो न कर सकती थी। उसकी आंखों में अजीब सूनापन था- एक अजीब अनिश्चितता का डर। मेरा हाथ पकड़ कर उसने कहा था- ''नन्ही अब हमारा क्या होगा हम तो सब वहीं छोड़ आए।'' मेरे पास कोई उत्तर न था। मैंने धीरे से अपना हाथ उसके कन्धे पर रखा और कहा ''निराश मत होवो।'' कभी तो हालात सुधरेंगे। बस थोड़ा वक्त लगेगा। उसके चेहरे पर हल्की सी चमक आई थी। मैंने उसे गुदगुदा दिया था। उसके गोरे चेहरे पर गड्डे गहरा गए थे। वह मेरे गले आ लगी थी।

लाल चौक में लोगों को पहले की तरह ख़रीददारी करते देख अच्छा लगता है। लोग घूम फिर रहे हैं। पर, हर ओर वर्दीधारी देख मुझे दहशत सी होती है। मैं ख़ालिद से कहती हूं, ''और नहीं घूमना मुझे, मुझे मेरे होटल तक पहुंचा दो। वह पहले नहीं मानता। चाहता है कि उसके घर होकर जाऊं, पर फिर जब मैं इसरार करती हूं तो वह मान जाता है। उसे

शायद मालूम है कि उसके घर की टूटन मुझ से देखी न जाएगी। उसकी अम्मी दहशत और खून खराबा देख कर मानसिक रोगी बन गई है। बहन बेबा होकर रह गई। कारोबार वैसे ही चौपट। कैसी बेबसी है।

देर शाम को शिकारे वालों से बेमतलब बातें करने का मन होता है। दूर से एक छोटी उमर का लड़का मस्ती में नाव ले कर आ रहा। उसकी कमीज़ के आगे के दो बटन खुले हैं और वह लम्बी तान भरकर महजूर का गीत गा रहा है। मैं उससे बतियाना चाहती हूं। नाम के आगे कुछ पूछती हूं तो उसे अच्छा नहीं लगता। पूछता है- ''आप कहां से हैं ? हमसे सब क्यों जानना चाहती हैं। मैं जानता हूं आप अखबार वाली हैं। आप लोग समझ क्यों नहीं लेते कि हम चक्की के दो पाटों के बीच पिस रहे हैं। हमारी राहें एक अन्धी सुरंग में गुम हो जाती हैं। हमें अपने कल की कोई ख़बर नहीं। आपको तो ख़ैर अपनी सियासत ज़िन्दा रखनी है।'' मैंने कितना कम पूछा था। पर वह इतना सब कह गया। मैं उसकी पीड़ा समझती हूं। अपने लिए उसके कहे हुए शब्द कुछ कठोर लगते हैं। पर उसे ऐसा न लगे चुपके से उसके शिकारे में उतर कहती हूं- ''न तो मैं अख़बार वाली हूं और न ही उतनी बाहर वाली। मैं भी अपना छूटा हुआ कुछ तलाश रही हूं। ऐसा कुछ जो बड़ा ही क्षत-विक्षत और आहत है कि उसे समेट भी नहीं पाऊंगी।'' झील के पानी में हाऊस बोटों की रोशनियां तैर-तैर जाती हैं। हवा तेज़ होती है तो ठहरी हुई झील में किश्तियों के साए डूबते-उतराते, कांप-कांप जाते हैं। दूर पहाड़ों पर कब ज़मीन के रंगों में आकाश घुल गया है, मालूम ही नहीं हो पाया।

''सुनो नेहरू पार्क से आगे ले चलो।'' वह पीछे मुड़ कर देखता है। अकेली औरत और गहराती शाम, बल्कि रात, मेरा विश्वास देख उसके चेहरे का कसाव ढीला पड़ जाता है। वह शिकारा बढ़ाता है। पर इस समय चुप है। मेरी स्मृति में सुरक्षित सभी शिकारे वाले बातूनी होते हैं। मैं उसे कुरेदना चाहती हूं। ''कुछ बात करो न। तुम्हारा धन्धा कैसा है ?''

''क्या बताएं जी। इस धरती को तो जैसे नज़र ही लग गई। जाने और कितना भोगेंगे हम।'' वह रुका रहा, फिर बोला- ''इस साल मई में सीज़न अच्छा रहा कई साल बाद लगा कुछ राहत मिलेगी पर कारगिल की लड़ाई ने सब चौपट कर दिया। सैलानी आना ही बंद हो गए। जो आए थे वे भी लौट गए।

वह चुप हो जाता है। मैं फिर से संवाद की स्थिति पैदा करती हूं- ''पर आजकल तो रौनक है। थोड़े बहुत लोग हैं।''

''हां जब तक अमरनाथ जी की यात्रा है तब तक तो लोग रहेंगे। उसके बाद तो वही खुशकसाली रहेगी।'' वह फिर से चुप हो जाता है। उदास भी।

''घर में कौन -कौन हैं।''

''मां है, दो बहनें हैं, भाई दो साल पहले मारा गया। आज होता तो......'' वह बात अधूरी छोड़ देता है।

''बहनें शादीशुदा हैं ?''

''जी नहीं- जब भी कोई सीज़न अच्छा रहा तो इन्शाअल्लाह निबटा दूंगा।''

''मैं दुआ करूंगी, भगवान करे बहुत जल्द ऐसा हो।'' वह मेरी और मुड़ता है। अन्धेरे में भी उसकी आंखों में उम्मीद की चमक दिख जाती है। झील के हिलते पानियों में अनजान से रिश्ते हिलोरें लेते हैं। नाज़ुक से वृत्त बनते हैं और फैलते हैं। फैलते चले जाते हैं। शुड़ुप से कोई मछली पानी से ऊपर उछल कर फिर डूब जाती है। शिकारा वापिस मुड़ता है।

आज यहां रुकने का अन्तिम दिन है। बहुत कुछ निबटाना है। तड़के उठकर वज़ीरबाग में बीजी को देखने जाती हूं। उनके दाएं हिस्से पर फ़लिज गिरा है। दुबली पतली कृषकाय दूर से बिस्तर पर पड़ी दिखती भी नहीं। मुझे पहचान तो लेती हैं पर बोल नहीं पातीं। मेरा हाथ पकड़ उसे सहला कर अपने होने का आभास देती हैं। एक बड़ा-सा आंसू उनकी आंख के कोने से ढुलक कर बिस्तर पर टूट जाता है। कैसा तो मन होता है उन्हें देखकर। क्या यह वही बीजी हैं जिनकी दहाड़ से सारी हवेली गूंजा करती थी। जिन्होंने अपना युगों लम्बा रंडेपा इसी दहाड़ के बल पर काटा था। पच्चीस साल की उमर थी उनकी जब दारजी चल बसे। कैसे तो सम्भाला उन्होंने अपने आपको और अपने परिवार को। क्या मजाल कि कोई टेढ़ी आंख से देख भी जाए। सारा कारोबार देखती थीं, आज क्या हो गई हैं। सारा परिवार दिल्ली बस गया है। एक वह हैं कि जाने के नाम पर ऐसे उदास हो जाती हैं कि मानो कभी ज़िन्दगी में लौटेंगी ही नहीं। उनका एक पोता उनके साथ है और एक पुराना नौकर और उसकी बीवी। वह समझती है कि उनकी वजह से दिल्ली वाले भी परेशान हैं, पर जीते जी इस हवेली से नाता तोड़ना उनके बस का नहीं। उनकी सांस की डोर हवेली के साथ ऐसे जुड़ी है जैसे हवा के साथ जीवन। उनके पलंग के दाईं ओर एक खिड़की बाहर बग़ीचे की ओर खुलती है। जब तक उठ सकती थीं, वहीं से आते जाते मौसमों को देखा करती थीं। परिवार दिल्ली चला गया तो वह खिड़की भी बंद हो गई। उनमें उठने की ताकत ही न रही। बीजी की आंख बंद होती है, मैं चुपके से उठने लगती हूं तो वह आंख खोल देती हैं। गौर से मुझे देखती हैं, फिर रो देती हैं। शायद कुछ कहती भी हैं जो समझ नहीं आता। कैसा तो मन कटता है। बहुत कोशिश के बाद हाथ तकिए तक ले जाती हैं। मैं मदद करती हूं। तकिए के नीचे से एक सौ रुपये का नोट निकाल कर मेरी ओर सरकाती हैं। अब और सम्भल नहीं पाता मुझ से। उनके हाथ पर सर रखकर रो देती हूं। उनके पूरे बजूद को देखती हुई कमरे से बाहर आ जाती हूं। मैं सोचती हूं मुझे प्रार्थना करनी चाहिए। इन सबके लिए। गेट के बाहर मुझे गुल्ला मिलता है। कुछ देर भौंचक देख कहता है- ''बीबी आप- आप राज़ी तो हैं। कब आईं.....।'' ''कैसे हो तुम।''

''जी अच्छा हूं। हाय बीबी आपके तो बाल भी पकने लगे। अभी कल ही तो आपकी शादी के जोड़ों पर कशीदाकारी की थी। अल्लाह वक्त भी कैसे गुज़र जाता है।'' वह चुप हो जाता है। शरारत से कहती हूं- ''गुल्ले तुम भी तो बूढ़ा हो गए। हज से फ़ारिग हुए कि नहीं ?''

''अरे कहां बीबी। हम ग़रीबों के नसीब में हज कहां। लड़की लड़कों की पढ़ाई, ब्याह सब कर-करा कर ही तो जा पाऊंगा न। कई सालों से आमदनी तो कुछ है नहीं। अब तक तो जैसे-तैसे चलता रहा पर रज़्ज़ाक के जाने के बाद तो कोई उम्मीद ही नहीं बचती। बस बीबी पूछो मत कैसे जी रहे हैं।'' वह ऐसे चुप हो जाता है जैसे कभी बोलेगा ही नहीं। मेरे अगले प्रश्न अपने अर्थ खो देते हैं। फिर भी मन में एक जिज्ञासा है कि जान लूं कि रज़्ज़ाक कैसे और किन हालातों में लापता हुआ। गुल्ला मुझ से आंखें चुराता हुआ कहता है कि उसके घर में मेरी दी हुई चीज़ें अभी भी सुरक्षित हैं, कि अभी उसका बूढ़ा बाप डैडी के दिए हुए गर्म कोट पहनता है। ''उन दिनों के चर्चे होते रहते हैं जब कपूर साहब (मेरे पिता) अपने पूरे लाव लश्कर के साथ पहलगांव जाया करते थे।'' गुल्ला उसका बाप और बीवी बल्कीस हमेशा साथ चलते थे। वह तब याद करके अच्छा लगता है। कैसे दिन थे वह। गले में कुछ अटक जाता है उसके। मुझे भी थोड़ा धुंधला दिखने लगता है। हम दोनों खामोश चलते रहते हैं, दूर तक। हवा में सर्र से एक परिन्दा अपनी डार को ढूंढ़ता हुआ-सा निकल जाता है। ''गुल्ले तुम जाओ, तुम्हे देर हो जाएगी।'' वह अपना हाथ माथे तक ले जाता है और एक विवश-सी मुस्कराहट के साथ विदा लेता है।

आज यहां, श्रीनगर की धरती पर हमारी अन्तिम शाम है। आगे आना कब होगा नहीं जानती। फिलहाल अगले कई सालों के लिए झील उसके पानियों में तैरते हाऊसबोटों के सायों और उनकी छिप-छिप चमकती रोशनियों को भीतर भर लेना चाहती हूं। होटल में जी घुटता है। बुलीवार्ड डल के किनारे लगी दीवार पर बैठ एक बार फिर से महसूस होता है कि झील जैसे मर रही है, सिकुड़ तो रही है, पर यह भी लगता है कि उसके पानी की सतह के नीचे जीवन जैसे सर पटक रहा है। उसके ऊपर से बह जाने वाली हवा में फौलाद घुला है जंगलों से आने वाली देवदारों की कच्ची महक नहीं। उसके गिर्द खड़े पहाड़ ज़रबख्तर में लैस सिपाही नज़र आते हैं। मन होता है कहीं से तेज़ हवाओं का रेला आए और झील पर तने इस फौलादी कसाब को अपने साथ बहा ले जाए। हल्का-हल्का खाली खाली कर दे सारे माहौल को। हवा में फिर से जंगल महकने लगे। ऐसा होगा....... नहीं मालूम। किसे मालूम है- यह भी तो नहीं मालूम। मन बीजी के पास चला जाता है शायद वही बता पाएं। पर कैसे ? वह तो बोल भी नहीं सकती। सिर्फ़ रो देती हैं। और यह गुल्ला, तोषी, जावेद, सुबाहना और झील। सब के चेहरे गड्ड-मड्ड पानी में डूबने उतराने लगते हैं। अब यहां और रुक नहीं सकती।

हमारी दायीं ओर कुछ लड़के मछली पकड़ने के लिए कांटा लगाए बैठे हैं। शाम गहरा जाती है और वे उठ खड़े होते हैं। खाली हाथ। बस एक गोरा-सा सुनहरें बालों वाला लड़का बैठा रहता है। उसका वहां बने रहना मुझे अच्छा लगता है। मैं अपनी दोस्त से कहती हूं- "चलो एक शर्त लगाते हैं। अगर इस लड़के को मछली मिली तो कश्मीर में फिर से भरपूर जिन्दगी लौट आएगी।" बचपन से ही यह हम सब भाई बहन यही करते कि जब कोई गुत्थी उलझ जाए और उसका कोई हल न मिले तो हम ऐसी जैसी ही शर्त बांध लेते और उसका उत्तर पा लेते। कभी वह सही होता और कभी गलत निकलता पर उस समय तो अच्छा ही लगता और इस तरह एक कठिन स्थिति से बाहर आ जाते।

"इसे मछली मिलेगी," और अगर न मिली तो। मेरी दोस्त बिना मेरी ओर देखे कहती है।

"ऐसा न कहो। इस धरती पर सब कुछ पहले जैसे होकर रहेगा। मेरा विश्वास है और फिर ऐसी तो कोई रात नहीं होती जिसकी सुबह न हो।" मैं अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाती कि शुडुप पानी की सतह पर से मछली खिंचे जाने की आवाज़ आती है। लड़का खुशी से चिल्लाता है। हुर्रे-आई गाट इट.....। ओ गाड आई गाट इट।" सुनकर मेरी आंखों में चमक आ जाती है। हवा हल्की हो जाती है। मैं अपने मित्र की बाहें पकड़कर आती हूं चलो चलें मुझे होटल जा कर अपने दोस्तों को ख़त लिखने हैं, मुझे संतोषी, शांत, अग्निशेखर तोषी और गुल्ले को बताना है कि मैंने झील को सांस लेते देखा है- कि डल के पानियों में मछली जीवित है- कि हवा में उनके नाम अब भी पुकारे जाते हैं कि जंगल की हवा में रुफ अब भी हिलौर लेता है। आसमान तारों से भर गया है। पानी में रोशनियां झूम रही हैं। इन्द्रलोक का समां है। आओ देखो जीवन सुंदर है- अभी भी।

o o o

संपर्क :- 19-ए, तवी विहार, सिद्ड़ा, जम्मू।

अतीत की फांस

❑ ओम गोस्वामी

उस दिन इल्मदीन की बातें सुनकर अनायास मेरी कलम फिसल पड़ी थी......

.... आज का श्रम-ऋषि शहर की गलियों में दो जून रोटी के लिए अपनी मेहनत बेच रहा है। ''भांडे कली करा लो।'' गर्मी में तपती तिमंज़ली- चौमंज़ली पक्की इमारतों से टकरा कर उसकी आवाज़ अकारथ वापस लौट आती है। गली की लू चीर कर उठती आवाज़ ख़सखस की भीगी चिकों की महक में सोए लोगों के खुर्राटों तले दब जाती है।

क्या वह मेरी हमदर्दी चाहता है ? शायद नहीं। इस अहसास के जागृत होते ही कलम रुक गई थी।

एकदम बदल चुके चौगिर्द के प्रति बातें कर के वह अपना जी हल्का कर लेना चाहता है। खौल रहे बंद बरतन का ढक्कन हटाते ही सारी गर्म भाप जैसे उफन कर बाहर निकल आए। मन की बात कह कर इल्मदीन ढेरों राहत पा गया था।

''.... बाबू वक्त तो एक बे-रहम खिलाड़ी है। एक शरारती लड़का जिसे बे-कसूर चिड़िया के पंख नोचने में खुशी मिलती है। दुनिया के सजे हुए मेले में उम्मीदों के पहिए पर दौड़ रहे आदमी को यह जुल्मी एकाएक गीध बनकर अपने घिनावने पंजों से नोंच डालता है। आदमी वह बेबस चिड़िया होकर रह जाता है जिसे शैतान लड़का मसल कर अनजानी राह पर आगे चला गया हो..... और पंछियों को मरोड़ने ....।''

संदर्भों से कट जाने की कड़वाहट उसके स्वर में टीस घोल रही थी।

''बे-जान वक्त को किसी की जान से, किसी के सांसों की डोरी से क्या लेना देना। उस निर्मोही को दूसरे की पीड़ा से कैसा सरोकार। अपने भारी पाटों में वह दाल-दलिया सब एक भाव पीसता चलता है........।''

अपने द्वार पर बैठा मैं मात्र यह सोच पाया था कि इस बूढ़े अस्तित्व ने वक्त के हाथों अपनी पराजय को एक परिभाषा दे दी है। पीड़ा के अथाह समुद्र में डुबकी लगाकर आदमी अपने अस्तित्व के लिए सार्थकता तलाश कर लेता है। तजुरबे के मोती ही किसी को ऋषि होने का अधिकार दिलाते हैं।

वह अपनी छोटी बोरी उठाए हवा को बोझिल बनाता हुआ भारी डग भरता तपिश के

पारावार की ओर बढ़ गया था। परंतु मेरी कलम ज़रा भी आगे सरक नहीं रही थी। दास्तान के जिस मोड़ पर आज उसने लाकर छोड़ा था, उसे सुनकर सहसा मेरे मुंह से निकला- ''जिनकी यहां ज़रूरत होती है, उनकी आगे भी ज़रूरत रहती है।'' यह रिवायती शब्द उसके सामने कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाया था। मुझे मालूम था, एक चट्टान है इल्मदीन का हृदय और इस चट्टान के पीछे एक बंवडर रुका पड़ा है।

आज मुद्दत के बाद गली में उसकी आवाज़ गूंजी थी- ''भांडे कली करा लो।'' शायद पन्द्रह बरसों के बाद।

बबलू और लबलू दौड़े-दौड़े बालकनी पर चले आए थे। वे उत्तेजना भरी आवाज़ में अपनी मां से कह रहे थे- ''ममी कुबड़ा आया है। बच्चों को पकड़ने वाला......। उसके पास एक बोरी भी है। क्या पता उसमें किसी बच्चे को बंद कर रखा हो.......।''

कमरे से उठकर मैं भी बालकनी में चला आया। पन्द्रह साल बीतने के बाद भी इल्मदीन की आवाज़ बदली नहीं थी। हां, उम्र की मकड़ी ने चेहरे पर झुर्रियों का जाल बिछा दिया था। पीठ पर का कूबड़ बढ़ गया था।

पन्द्रह बरस पहले जब बबलू-लबलू इस दुनिया में नहीं आए थे, मैं इल्मदीन से मिलने मुहल्ला उस्ताद में गया था। मुझे अपनी गरज थी। सांझे परिवार से जब कपड़ा- लत्ता देकर अलग कर दिया गया तो सब से पहले उस दिन की रोटी पकाने की चिंता ने घेर लिया था। घरवाली का आग्रह था- ''पतीली-कटोरियां और दूसरे बरतन कलई होने ही चाहिए।'' गृहस्थी की पहली रसोई थी। इसलिए यह काम औपचारिक न रहकर उसकी दृष्टि शुभ महूर्त का पर्याय हो गया था।

बिना हत्थी का छाता ताने मैं उस्ताद मुहल्ले में चला आया था। टूटे हुए किवाड़ खुले पड़े थे। भीतर जाते ही कहा- ''मिसतरी जी सलाम। ढीली चारपाई पर बैठा इल्मदीन हुक्का पी रहा था। उसने हुक्के की नली एक ओर की ओर चारपाई के एक छोर पर चादर का कोना बिछा कर इशारा किया- ''आइये, बैठिए।''

कुछ देर ठहर कर पूछा- ''आज इतनी तेज़ बारिश में कैसे तकलीफ की ?'' मैंने बतलाया घर से हिस्सा देकर अलग कर दिया गया हूं। आज पहली बार अपनी रसोई में भोजन पकेगा। .... मगर समस्या यह है कि भांडे ....।''

बात पूरी होने से पहले ही वह बोला....। ''मैं आपकी बात समझ गया।'' फिर उतावली में उठ खड़ा हुआ। पांव में चप्पल फंसा कर कोने में पड़ी बोरी की ओर लपका। तभी उसका पोता बोला- बाबा इतनी बारिश में आप कमाने निकलेंगे।''

"अरे तो क्या हुआ ? यह क्या बारिश में चलकर नहीं आए हैं।" फिर स्वर में दृढ़ता चली आई–"इनकी पहली रसोई पकेगी। बरतन कलई नहीं होंगे तो चौके की पवित्रता नहीं रहेगी। मुझे पता है ये लोग चौका खराब करने से भूखों रहना पसंद करेंगे। खुदाई कायनात में किसी के भूखों रहने से बड़ा कुफ्र और कुछ नहीं। और यह समझ लो कि अगर मेरे कारण यह भूखे रहेंगे तो रोज़े- क्यामत को मैं अल्लाह का गुनहगार कहलाऊंगा।"

मैंने कहा– "ज़रा रुक जाइये। बारिश कम होते ही निकल पड़ेंगे।"

"बाबू जी, मैं नमक का नहीं बना हूं कि पानी की चंद बूंदों से गल जाऊंगा। आइये चलें।" कहकर वह दहलीज से बाहर निकल पड़ा– लोग तो कमाई करने बहरीन, दुबई और न जाने कहां-कहां जाते हैं। हमें तो शालामार तक चलना है।

रास्ते में बूंदें थम गई थीं। इल्मदीन कहने लगा– "इरादा पक्का हो तो बारिश तूफान हट जाते हैं।" कुछ आगे बढ़ने पर कहने लगा– "यह तो अपने-अपने प्रेम की बात है। आपको क्या कलईगीरों की कमी है ? बहुतेरे हैं। पर हमारा पुराना व्यवहार है। मेरे काम पर यकीन है, इसलिए सीधे मेरे घर चले आए।" तब वे मेरे स्वर्गीय पिता के बारे में बातें करने लगा। उसे तसल्ली थी कि वे अपने होटल के बर्तनों का सारा काम उसी से करवाया करते थे।

उस दिन कलई का काम करके और अपनी मेहनत की मजदूरी लेकर ज्यों ही वह फारिग हुआ दुबारा रिमझिम शुरू हो गई थी। फिर तेज़ आंधी चलने लगी। पेड़ों के टहने टूट रहे थे। तब आकाश से एकाएक ओले गिरने लगे। इतने मोटे ओले मैंने अपनी होश संभालने के बाद पहली बार देखे थे। शहर के तमाम पेड़ रूंड-मुंड हो गए थे। ज़ोर भर कर इल्मदीन को अपने पास रोक लिया था।

दुनिया के व्यवहार पर वह दु'खी था और कह रहा था– "समय की हवा ही उलट चल रही है। मुहब्बत का चलन नहीं रहा। लोग अकेले होते जा रहे हैं। ढाई ईंट के छप्पर में ढाई चावल की खिचड़ी पक रही है।....... बड़े परिवार से अलग होना ऐसा ही है जैसे पत्ते का पेड़ से जुदा होना। आज पत्ता-पत्ता जुदा हो रहा है। या खुदा क्यामत आने में देरी क्यों है। खुदगर्ज़ी की कोई हद नहीं रही। अलग करने और अलग होने दोनों स्थितियों में खुदगर्ज़ी है। पर क्या किया जा सकता है। बचपन में बड़ों बजुर्गों से कलयुग के यही लच्छन सुना करते थे जो आज देख रहे हैं। खानदान के पेड़ से बिछुड़ते हुए आपको दुःख ज़रूर हुआ होगा। पर दुःख सहे बिना सुख का ज़ायका नहीं मिलता। अकेला फूल अधिक महकता है, हां उसे कांटे ज्यादा घेरते हैं, पर अकेले होने की कुछ कीमत भी चुकानी पड़ती है। क्या नहीं .... ?"

बारिश थमने पर वह सामान से भरी अपनी बोरी उठा कर वापस चला गया था। परिवार से अलग कर दिए जाने की मुझे हलकी-सी खलिश थी। शायद इसलिए उसकी बातें बार-

बार याद आ रही थीं। साथ ही रह-रह कर यह प्रश्न कौंध उठता कि इतनी गहरी बातें कहां से सीखी होंगी इल्मदीन ने। वह तो शहर का एक बे-परवाह बांका था। जवानी के दिनों में कोचवानी करता रहा था। सिर पर कुल्लेदार पगड़ी बांधे जब वह अपना सजावटदार तांगा सड़क पर लाता तो राह पर गुज़र रहे लोगों की नज़रें बरबस उस पर ठहर जातीं।

बड़े भइया को जिन दिनों कालेज से अर्स्टीकेट कर दिया गया था, पिता जी प्रिंसीपल से मिलने उनकी कोठी पर गए थे।

इल्मदीन के तांगे में मैं भी उन दोनों के साथ था। सांझ की बेला थी। नहर के किनारे उगी भांग के पौधों की मादक गंध में भीगी हवा के झोंके बड़े सुहावने लग रहे थे। मस्ती में घोड़ी हिनहिनाने लगती। उसके सिर का लाल चिंदोबा गुलाब की टहनी की तरह हिलने लगता। ऐसे में इल्मदीन ने सुरीली तान छेड़ दी थी। नमी से बोझिल हवा के धुंधले परदे के पीछे वारिस शाह की हीर जीवित हो उठी हो। जैसे समय को अपने स्नेहिल पाश में बांधने वाली हीर और रांझा की अमर प्रेम-गाथा ने अजब समां बांध दिया था। गज़ब का रसीलापन था उसकी आवाज़ में और घोड़ी तक आवाज़ की मौज को पहचान रही हो। जैसे वह ऐहतियात से टाप पटकती मानों उसे अहसास हो कि ज़रा हलका या भारी पांव पड़ते ही गीत की लय टूट जाएगी। टप-टप-टप की ध्वनि पर उठते-पड़ते टापों से सुनहरी चिनगारियां फूटतीं। हृदय में टीस भरा सुख का सोता उमड़ पड़ता। सरपट भागते तांगे के पीछे रात की कालिख में रस-भंग की कसक भर उठती। यह है संगीत की अमर अनुभूति।

कोठी के बाहर पसरे लंबे बगीचे में प्रिंसीपल साहब ने इधर आ रहे तांगे को दूर से देख लिया था। टापों की ध्वनि से सम बैठाती इल्मदीन की मोहक आवाज़ को संभवतया उन्होंने सुन लिया था। भइया को कालेज से निकालने की बात और उनका ध्यान कम था। पिता जी को उन्होंने आश्वस्त किया था भइया को दुबारा कालेज में रख लिया जाएगा। वे विमुग्ध से तांगे को देखे जा रहे थे। फिर उत्सुकता मिटाने के लिए उन्होंने पूछा था- ''क्या यही इल्मदीन है ?''

पिता जी कहते इससे पहले वह स्वयं बोला उठा- ''हां साब, हम ही इल्मदीन हैं। क्यों जनाब ?''

''भाई, शहर में तुम्हारे तांगे और तुम्हारी हीर के बड़े चर्चे हैं इन दिनों।''

''साहब मेहरबानी आप लोगों की। मगर गुस्ताखी मुआफ, हीर तो अपने रांझे की थी। मेरी हीर तो यही काली कलूटी घोड़ी है, हिनहिनाने और दौड़ने वाली।''

सहसा वातावरण में एक ठहाका गूंजा। इसमें इल्मदीन की ज़िंदादिल आवाज़ भी शामिल थी।

आज वर्षों के बाद बालकनी से इल्मदीन को देख रहा था। क्षण भर में स्मृति के पन्ने पीछे की ओर उलटते गये थे। विगत का घटनाक्रम तेज़ी से आंखों के सामने गुज़र गया था।

अब बबलू-लबलू दुबारा बालकनी में चले आए थे। बबलू बोला ''डैडी! कुबड़ा बच्चों को पकड़ता क्यों है ?''

मैं कुछ कहता इससे पहले लबलू बोल पड़ा- ''ममी कहती है वह रोंदू बच्चों को पकड़ लेता है।''

बालपन की भोली उम्र अद्‌भुत दुनिया के रहस्मय लोग और अज्ञात के कुहासे से झांकते डरावने अहसास। सोचकर मैं मुस्कराने लगा।

''डैडी ये बच्चों को पकड़ कर क्या करता है ?'' दोनों बालकनी के जंगले से गली के उस मोड़ की ओर देख रहे थे जिधर से इल्मदीन की हांक उभर रही थी।

''बच्चू, यह बच्चे पकड़ने वाला कुबड़ा नहीं है। यह तो इल्मदीन कलईगीर है। भांडों पर कलई का काम करने वाला।''

लबलू ने झट अन्तर पकड़ा। कहने लगा ''डैडी। कुबड़ा काली बिल्ली पर बैठकर आता है न ? उसकी बात सुनकर दुबारा मुझे उत्सुकता हुई और हंसी फूटने लगी। एक तिलस्मी संसार है बचपन, जिसमें घोगड़ बाबा, भूत-चुड़ैल और बच्चे पकड़ने वालों का भय होता है।

''काली बिल्ली की आंखों में दो बल्ब जल रहे होते हैं, मल्लू जी।'' बबलू लबलू को समझा रहा था- ''कुबड़ा काली रातों में बिना टार्च के देख लेता है। बिल्ली की आंखों से उसके लिए रोशनी निकलती रहती है।''

''बेटे, यह पकड़ने वाला कुबड़ा नहीं है। यह तो बड़ा अच्छा आदमी है, बड़ा स्याना। कभी कोचवान हुआ करता था। इसका अपना तांगा था। अब यह बर्तन कलई करता है।''

''डैडी, बच्चे पकड़ने वाला कुबड़ा कहां होता है ?'' लबलू हैरानी से पूछ रहा था।

''तेरी नानी के ननिहाल में होता है।'' मैंने हंसकर कहा और बालकनी से गली में चला आया। इल्मदीन ड्योढ़ी के आगे गुज़र रहा था। मैंने बनावटी तौर पर खांस कर कहा- ''मिसतरी जी, सलाम।''

उसने नज़र उठाकर मेरी ओर देखा। आंखें निरभाव थीं, मानो पहचाना न हो।

''सुनाइये काम-काज कैसा है ?'' मैंने बात चलाने के लिए पूछा।

''काम की मत पूछिए। इन दिनों भूख भंगड़ा डाल रही है।''

''एक मुद्दत के बाद देख रहा हूँ आपको।''

इल्मदीन ने नि:श्वास छोड़ा। बेबसी अपनी कथा कह गई थी। बोला– ''बाबू जी, पीतल का रिवाज़ रहा नहीं। और स्टील को लोग कलई करवाते नहीं। इस उम्र में अपने जिस्म के बेकार ढांचे को कहां-कहां घसीटूं। और कैसे गला फाड़कर समझाऊं कि आपके बर्तनों को चांदी-सा चमकीला बनाने वाला इल्मदीन चला आया है।''

सुनकर मुझे अफसोस हुआ। इस लाचारी की हालत में पीठ पर कूबड़ उठाए गली-गली में हांक लगाते घूमना, कितनी ज्यादती है समय की।

''आपका पोता क्या करता है ?'' मन ही मन मैं सोच रहा था, आज की हवा के मुताबिक उस ना-मुराद ने बुड्ढे को बाहर धकेल दिया होगा। काम-काज कुछ करता नहीं होगा, अभी इसे इस दशा में गलियों में घूमना पड़ रहा है।

उसने बे-जान नज़रों से मेरी ओर देखा। ''नामुराद मुझे धोखा दे गया। कहता था बाबा आप आग में हाथ मत जलाइये। आपको हर महीने डाकिया मनीआर्डर और चिट्ठी दे जाया करेगा। मुझे आग से रोकता था पर खुद आग से खेल गया। बेईमान बड़ा कलेजा था उसका। फौज में भरती होकर चला गया था.... और फिर उसका बिस्तर लौटा था। इकहत्तर की लाम में वह दुश्मन से लड़ते हुए शहीद हो गया। उसकी चिट्ठियों के इन्तज़ार में उसकी मंग कहीं और ब्याही गई थी। किस्सा खत्म हो गया.........।''

बबलू-लबलू मेरे पीछे आकर खड़े हो गए थे। उनका डर अभी पूरी तरह उतरा नहीं था। वे विस्फारित नेत्रों से उसे देखे जा रहे थे। उसकी बातें उनकी समझ से ऊपर थीं । उनके हाव-भाव देखकर इल्मदीन की आंखों में चमक उभर आई।

वह कहने लगा– ''बच्चे समझते हैं, कुबड़ा कोई राक्षस है, ज़ो बच्चों को उठाकर ले जाता है। तमाम गलियों में यही होता है। पर इनका क्या दोष। इन्हें इनके मां-बाप ने कभी बतलाया ही नहीं कि कुबड़ा भी इन्सान होता है। या यह कि कोई आदमी कुबड़ा क्यों हो जाता है। मैं खुद सुनाया करता हूं लोगों को कि आदमी को उसकी नीयत की मुराद मिलती है। जवानी के दिनों में मैं आदमी को धरती पर रेंगने वाला कीड़ा समझता था। और तुम जानते हो अहंकार का सिर सदा नीचा रहता है। अल्लाह ने मुझे सज़ा देकर अहंकार को नीचा दिखलाया है कि लोगों को सनद रहे........।''

इसी दौरान घरवाली कुछ पतीलियां और पीतल का छोटा-मोटा सामान उठाकर ले आई थी। इन्हें देखते ही इल्मदीन के चेहरे पर रौनक दौड़ी चली आई। बोला– ''पीतल के बर्तन

में हज़ारों बरकतें हैं। स्टील टूट-फूट जाए तो एक कौड़ी तक नहीं मिलती। पीतल तो भी आधी कीमत चुका जाती है। एक पढ़ा-लिखा बाबू कह रहा था स्टील में खाना खाने से चांदनी का रोग हो जाता है।''

वह कलई करने में जुट गया। उसके चेहरे पर तृप्ति की भावना थी।

बच्चे मुस्कराते हुए अपनी मां की ओर देख रहे थे। ''यह पकड़ता नहीं है। आप झूठ कहते हो।'' लबलू कह रहा था। दोनों अपनी मम्मी से तर्क-वितर्क करते हुए भीतर चले गए थे।

मैंने बात शुरू की- ''मिसतरी जी, आप हीर बढ़िया गा लिया करते थे।'' कुछ देर वह चुप रहा। फिर बोला- ''टेम-टेम की बात है बाबू जी। जवान सीने से हीर अपने आप फूट कर बाहर निकल आती है। घोड़ी हवा से बातें करती थी और हवा में हीर का संगीत घुल जाता था। अब वह टेम नहीं रहे ? न टमटम, न घोड़े। बग्घी का ज़माना लद गया। मिनी बसें और टेम्पो दौड़ने लगे।''

मैंने कहा- ''मिनी बसों में हीर की जगह डिस्को रिकार्ड बजते हैं।''

इल्मदीन के होठों पर फीकी-सी मुस्कान उतर आई।

''आज की जवानी गीत नहीं गालियां गाती और गोलियां चलाती है। तांगे की जगह मिनी बस चली आई, जब पीतल की जगह स्टील ने ले ली मुझे शायद इन बातों से उतना दुख नहीं हुआ। तकलीफ तो तब हुई जब यह अहसास हुआ कि आदमी के सीने में दिल बदल गया है। उसे खरे-खोटे की तामीज नहीं रही।''

''आप बजा फरमाते हैं।''

''पता नहीं आप के पास वक्त है या नहीं, क्योंकि जब मैं बातें करता हूं तो बातें शैतान की आंत हो जाती हैं।''

''मगर मुझे आपकी बातों में एक सच्चे इन्सान का दर्द दिखाई देता है। आप बड़ी पते की बातें करते हैं।''

अचानक इल्मदीन ने एक ठहाका लगाया और कड़वाहट में डूबी आवाज़ में बोला- ''जिन्हें आप पते की बातें कहते हैं ये बड़ी आम बातें हैं। यह भी दुःख की बात है कि निहायत छोटी और आम बातों के लिए आज हमारे पास वक्त नहीं रहा।''

मैं शांति से उसका चेहरा ताकने लगा।

''सिर्फ आदमी ने पैदाइशी खस्लत बदल दी। बे-ज़बान जानवर सदियों से उसी तरह से हैं जैसे खुदा ने उन्हें बनाया था। आपने हीर की बात कही उसी के हवाले से कहता हूं-

जब घोड़ी गीत के बोल सुनती थी तो मानो उसे अहसास रहता था कि पैरों का ज़रा-सा क्रम बदलने पर गीत से उसका तालमेल टूट जाएगा। सुनने में यह बात विचित्र लगेगी, पर यह सच है कि गीत सुनकर जानवर भी मस्त जाता है।'' कह कर वह हंसा।

''अब मिनी बस का ड्राईवर गीत गाएगा भी तो सुनाएगा किसे ? इन्जन थोड़ी न सुनेगा। हमारे ज़माने के जम्मू की और ही रंगत थी। वे बातें अब बीता सपना लगती हैं। सड़क पर तांगा दौड़ रहा है। एक कोचवान हीर की तान छेड़ता तो दूसरा उस तान को उठाकर बरोबर आगे बढ़ाता। गाने वाले और सुनने वाले दोनों एक जादू भरे माहौल में डूब जाते। एक बार लाहौर के सफर पर वहां की तांगा यूनियन के कोचवानों से मुकाबला हो गया। रहीमा नामक तांगेवान तो हीर सुनकर अपनी बेटी का रिश्ता करने के लिए इसरार करने लगा था। मनमौजी आदमी था। कहने लगा तेरे गाने पर तो तुझे सात खून मुआफ होने चाहिए। .....यह उन दिनों की बात है जब मैं आदमी को रास्ते की धूल समझता था। उस लड़की से फरेब कमा कर मैं चोरों की तरह इधर वापस चला आया। उस बेचारी ने गले में फंदा डालकर जान गंवा दी होगी। हां, अपने एक साथी से इतना ज़रूर मालूम पड़ा कि उसका बाप बेटी के गम में मर गया था। ऊपर वाला मेरे किए की सज़ा मुझे अब तक दे रहा है। मेरे गुमान को दबाने के लिए उसने मेरी पीठ के ऊपर यह छोटी-सी पहाड़ी खड़ी कर दी... तब लड़के से जुदाई दी। आखिर में शेर जवान पोता भी छीन लिया....।'' बोलते बोलते वह रुक गया। हवा भारी हो गई थी- दमघोटू सी। फिर वह बुदबुदाया- ''वक्त का पहिया चलता रहता है। बे-रहमी से सब कुछ कुचलता-मसलता, आशा, अभिलाषा और हौसला...।''

मुझे याद है जब घोड़ी सरपट भाग रही होती, इल्मदीन तांगे के पहिये पर चाबुक की लकड़ी रखता जिस से तेज़ गति, में टक-टक की आवाज़ निकलती जो ''हीर'' के मर्म-स्पर्शी संगीत को चीर जाती, टुकड़े-टुकड़े कर देती। क्या वक्त ने भी इसी तरह इल्मदीन के जीवन संगीत को टुकड़ों में बिखेर दिया था ?

जब कभी गली में उसकी आवाज़ गूंजती बबलू-लबलू दौड़े-दौड़े बालकनी पर चले आते और कहते- ''अच्छे-अच्छे बाबा इल्मदीन जी सलाम।''

अब वे प्राय: उसकी चर्चा करते रहते। कुछ पल हमारे आंगन में बैठकर इल्मदीन बतियाता, फिर हांक लगाता हुआ आगे चला जाता है। वह कहा करता ''दुनिया में सचाई सिर्फ बच्चों की आंखों में एक खुदाई नूर बन कर चमकती है।''

पिछली दीवाली से कुछ रोज़ पहले गली से गुज़रते हुए इल्मदीन हमारे यहां रुका था। अपने बोरू से बंदरों के दो मुखौटे निकाल कर उसने दोनों बच्चों को पहना दिए।

उन्हें मानों दुनिया की सबसे कीमती वस्तु मिल गई हो। वे हंसते-चीखते बंदरों की

तरह उछलते-कूदने लगे थे। क्षण भर के लिए इल्मदीन अपना-आप भूलकर मानो बच्चा बन गया था। राइटिंग टेबल के पास बैठा मैं बाहर देख रहा था। इल्मदीन कह रहा था- ''हनुमान की सेना जी। मैं गरीब राक्षस हूं। मुझे मारिएगा मत।''

बबलू-लबलू बंदरों के मुखौटे लगा कर बिदक उठे थे और धमा-चौकड़ी मचा रहे थे। वे उसे टूटी-फूटी हिन्दी में डरा रहे थे- ''जै सिरीराम, ओए राक्शस। अम अपना गुरज अपने घर भूल आए हैं। नईं तो अमने तुम की हड्डी-पसली तोड़ देनी थी।''

इल्मदीन बोला- ''तुम मुझे मारोगे तो मैं अपनी लक्कड़ नानी के आगे रोऊंगा।'' लक्कड़ नानी कौन ?'' बच्चों ने पूछा।

इल्मदीन ने उत्तर दिया- ''नानी की नानी। मल्लू जी, पता है कैकेयी की नौकरानी मंथरा कुबड़ी, मेरी लक्कड़ नानी की नानी थी।''

''मंथरा तो बहुत बुरी थी न ?'' लबलू ने भोलेपन से कहा।

''मैं बहुत बुरा हूं।'' इल्मदीन ने उसी स्वर में उत्तर दिया।

एकाएक दोनों बच्चे इकट्ठे बोल पड़े- ''नहीं जी। आप बहुत अच्छे हैं, दयालु हैं।''

सहसा इल्मदीन की आंखों से दो आंसू ढरक पड़े। दोनों बच्चे सहम कर पूछने लगे- ''हम ने कोई गंदी बात कह दी आप से ?''

इल्मदीन आकाश की ओर देखते हुए बुदबुदा रहा था- ''मैं अच्छा होता तो वह क्यों होता जो हुआ। गुनहगार पर ही खुदा का कहर बरपा होता है।''

कुछ न समझ कर बच्चे चुपचाप छत्त पर चले गए थे।

मैं कागज़-कलम एक ओर रख कर बाहर निकला और इल्मदीन के पास चला आया। मुझे सामने पाकर उसने अपने को संभाला और कहने लगा- ''बुढ़ापा आदमी को कमज़ोर बना देता है। बचपन की ज़रा-सी याद चली आई, उन दिनों की जब रामलीला में मंथरा का रोल किया करता था- आंखें छलक आईं। बाबू जी, बबलू और लबलू जब समझने के काबिल हो जाएं, उन्हें समझाइयेगा कि जिंदगी में भूलकर भी किसी बुरे शख्स का रोल न करें। न किसी बुरे के पीछे चलें। मेरी बात को लोग वहम मानेंगे, पर मेरा कामिल यकीन है कि हम जिन चीज़ों का स्वांग भरते हैं, वे बातें हमारे जीवन में घट के रहती हैं। मेरी ओर देखें, बीते वक्त की परछाइयों ने किस तरह मेरी कायनात के सूरज को ग्रस रखा है।''

प्रसंग बदलने की नीयत से कहा- ''अब भी कभी आपके होठों पर हीर उतर आती होगी, इल्मदीन जी ?''

वह एकटक मेरी ओर देखता रहा।

''....... बाबू जी, इस बेचारी ज़िन्दगी के हर कदम पर एक अंधेरा मोड़ मगरमच्छ की तरह मुंह बाए खड़ा है। कोई नहीं जानता इसमें आपके लिए कांटों की चुभन है या फूलों की महक। वारिस शाह ने तो हीर के बहाने खुदा की इबादत का रास्ता दिखाया था। हीर में आप इश्क की हकीकत ढूंढोगे तो वह मिलेगी, खुदा की रहमत देखोगे तो वह दिखेगी।'' उसकी भीगी आंखों में एक चमक उतर आई थी। स्वर में आत्म-विश्वास की झलक थी। मानो बारिश के बाद कड़कती धूप निकल आई हो।

नि:स्तब्ध पड़ी गली में वह आगे चला जा रहा था– मोड़ के उस ओर जहां उसकी आवाज़ गूंजी ..... ''भांडे कली.......।''

मुड़ कर उसने इधर देखा। बालकनी पर खड़े बबलू-लबलू अपने कोमल और छोटे-छोटे पत्तों जैसे हाथों को अलविदा में हिला रहे थे। शायद इनकी हवा इल्मदीन तक पहुंच रही थी। उसका चेहरा खिल उठा था।

ο ο ο

संपर्क : *181 पहाड़ियां स्ट्रीट, जम्मू तवी-180 001*

शोक

❑ अवतार कृष्ण राज़दान

सुले के पकड़े जाने की ख़बर गांव में आग की तरह फैल गई। वे उस समय इकट्ठे होकर किसी की इस हरकत के विरुद्ध विरोध प्रकट करते, किन्तु इनके चेहरे पर भय और आतंक का मिश्रण था। वस्तुत: वे जानते थे कि इसके पीछे किसी का हाथ हो सकता है। गत कई वर्षों से उसी ने इस गांव को कब्रिस्तान में बदल दिया है। इसलिए वे इससे नफ़रत करते थे। उसे न लोगों से दिलचस्पी थी, न ही गांव के विकास में। उसका काम था सिर्फ लोगों में आतंक फैलाना। किन्तु आज वह भी अपनी इस हरकत से भयभीत हो उठा। उसको डर लगा कि कहीं गांव के ही लोगों में से कोई उस पर गोली न चलाए। इसलिए उसने गुप्त रूप से अपने आदमियों को आदेश दिया- ''मेरे मकान की बन्दूक और हथ गोले से रखवाली होनी चाहिए।''

कोई अजनबी नहीं था। वह गांव का जाना पहचाना आदमी था। गांव में उसकी इज़्ज़त थी। इसलिए नहीं कि उसका व्यक्तित्व भव्य था। बल्कि इसलिए कि वह मालदार आदमी था। नाम था उसका अकरम।

सुले के पकड़े जाने के बाद जब उसने इसको देखा तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि यह वही सुले है। भूताकार चेहरा! लंगोटी के सिवाय उसके तन पर कोई कपड़ा नहीं था। उसके दोनों हाथ रस्सी से बंधे थे। वह कुछ नहीं कह पा रहा था। केवल अकरम की ओर देख रहा था- भूखे शेर की तरह। उस समय ऐसा लग रहा था कि यदि वह जंगजू-जनूनियों की गिरिफ्त से पल भर के लिए छूट पाता तो कुछ ही मिनटों में अकरम को भारी भरकम शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देता। इसलिए वह चिल्लाया- ''ठीक से पकड़ो इस कमीने को।''

उस समय सुले यही सोचता था कि काश एक बार परवरदिगार का नाम लेकर अकरम को गोलियों से छलनी करने में सफल हो जाए। किन्तु नहीं, उसके दोनों हाथों में रस्सी का कसाव मज़बूत हो गया और उसको अकरम के पास लाया गया।

'इस हरामज़ादे को पहले पेड़ से बांध दो'-अकरम चिल्लाया।

जंगजू जनूनियों ने सुले को पेड़ से बांध दिया। सुले ने उनको रोकने की हर संभव कोशिश की किन्तु असफल रहा। वह उनको वाकई रोक सकता था किन्तु इस समय उसमें किसी से टकरा जाने की हिम्मत नहीं थी। एक तो गोलियों के साथ जंग और दूसरा कई दिनों से खाली पेट। उस पर भी मुसीबत यह कि उन दिनों वह फरार हो गया था। वह

कभी किसी पहाड़ी की चोटी पर दिन काटता, बियाबानों में रातें गुज़ारता या अपने को पूरी तरह छिपाने के लिए घंटों किसी नदी में डुबकी मार कर रहता। गत एक महीने से वह यही करते-करते अपने जंगजू गुट से फरार हो गया था। किन्तु एक दिन ज्यों ही वह पेड़ के नीचे लेटा तो उसकी समझ में आया ही नहीं कि यह क्यों हो गया, क्या हो गया और कैसे हो गया। उसने आंखें खोली और अपने आस-पास आगे-पीछे जंगजू-जनूनियों को बन्दूक और बमों से लैस पाया। भागने की कोशिश की किन्तु नहीं, वह पकड़ा गया। उस समय भी उसके दिल ने चाहा कि उनका भेजा निकाल दे मगर पल भर में ही उसने देखा कि उसके हाथ रस्सी से बंधे हैं।

''क्या नाम है तेरा ?'' अकरम दहाड़ उठा।

सुले चुप

''हराम जादे। बोलता क्यों नहीं ?''- अकरम ने एक बार फिर दहाड़ कर कहा।

''सुले''- उसका उत्तर।

''सुले हां तो सच बता, तूने शमीमा को ऐसी कौन सी धमकी दी थी कि उसने आत्महत्या कर ली थी ?'' यह झूठ है। वस्तुतः सत्य यही है कि आपने ही उसको दिन-दहाड़े गोलियों से भून डाला।- सुले का सपाट उत्तर।

''झूठ। उसके हत्यारे तुम हो।'' अकरम का प्रत्युत्तर।

''कमीने, पाजी, हरामज़ादे। अपने कुकर्मों का चोला मुझे पहनाते हो ?''- सुले के ज़ोरदार शब्द।

''बेंत चलाओ।'' अकरम ने चिल्लाकर कहा। बाड़े के जंगजू-जनूनियों ने सुले के नंगे बदन पर बेंत चलाना शुरू किया।

'नाम एक बार फिर बताओ'- अकरम ने पूछा।

सुले।

''तू इसी गांव में बसता है ?''

''हूं।''

''शमीमा तुम्हारी बीवी थी ?''

''हां''

जिंदगी में एक दिन न जाने यह कैसे हो गया और क्यों हो गया। शमीमा उदास हो गयी। वह कुछ भी कह नहीं सकी। उसकी आंखों से आंसू बह निकले।

''क्या बात है ?''– सुले ने पूछा।

''कुछ नहीं''– शमीमा बोली।

''ज़रूर कुछ बात है कहती क्यों नहीं ?''– सुले ने प्यार भरे लहजे में कहा।

''कुछ नहीं। सोचती हूं कि इस तरह मारामारी करने से तुम्हें क्या मिलता है ? तुम्हारी जंग तो फौज के साथ है किन्तु बीच में निर्दोष लोग मारे जाते हैं। वे भी तो हमारे अपने भाई हैं''– शमीमा ने कहा।

''आज़ादी हमेशा बलिदान मांगती है।'' –सुले ने समझाते हुए कहा।

''मगर आज़ादी मांगने से पहले समाज के हर किसी वर्ग की राय जानना ज़रूरी है।'' शमीमा ने कहा।

''मतलब ?''– सुले का आश्चर्य।

''देखिए हमारे पंडित और सिक्ख भाई जो शताब्दियों से यहां रह रहे हैं, आतंक और भय के कारण अपने ही प्रदेश के दूसरे क्षेत्र जम्मू पलायन करके शिविरों में सड़ रहे हैं। क्या वे इस तरह की आज़ादी चाहते हैं– शमीमा ने पूछा।''

''अरी हमारे प्रदेश में पंडित और सिक्ख कितने हैं ?' हमारी जनसंख्या का मात्र दो प्रतिशत। जिस तरह की आज़ादी हम चाहते हैं या चाहेंगे, उसी तरह की आज़ादी उनको भी पसंद होगी''– सुले ने कहा।

''तुम्हारी यह गलत फहमी है। इनकी राय जाने बिना मुझे लगता है कि हम इस अभियान में सफल नहीं होंगे। शमीमा ने कहा– भारत के हिन्दुओं का कोई भी फैसला तब तक सार्थक नहीं होगा जब तक कि किसी विषय पर वहां के मुसलमान सिक्ख या ईसाई की राय न मिल जाए''– शमीमा ने कहा।

''वह कैसे ?''– सुले ने पूछा।

''वह इसलिए कि हम सब एक ही परिवार के सदस्य हैं चाहे हमारा धर्म कुछ भी क्यों न हो–'' शमीमा ने कहा।

''इस तरह का हमारा अभियान चलाने से सभी को गर्व होना चाहिए''– सुले ने कहा।

''यह तो सच है। ज़रा आप ही सोचिए कि क्या मिलता है हमें इस तरह के अभियान चलाने में ? कुछ नहीं। रोज दर्जनों मरते हैं, हमारी अर्थव्यवस्था ठप्प होकर रह गयी है। आज़ादी का नाम जपकर हम बदमाशों के गुलाम बन गए हैं।'- शमीमा ने कड़क कर कहा।

''तुम्हारी मंशा क्या है ?''- सुले ने पूछा।

''हम पहले की तरह मेहनत-मजूरी करेंगे- अपना पेट भरने के लिए। हमारी मेहनत का कोई अनुचित लाभ न उठाए। हम जिएं तो अपने लिए।''- शमीमा ने कहा।

''मेरे दोस्त अशरफ की तरह।''-सुले ने कहा।

''हां, वही अशरफ। उसने इन बन्दूकों को छुआ तक नहीं देखो कैसे मज़े में दिन कट रहे हैं उसके ? और हम हैं कि अकरम के गुलाम बने हैं। उसके हर आदेश का पालन करने पर मजबूर हैं।''-शमीमा ने कहा।

गत कई दिनों से सुले को शमीमा की बातें छू रही थीं, किन्तु अब उसने बन्दूक चलाने, बम-बिस्फोट करने आदि का प्रशिक्षण पा लिया था। अब तक उसके हाथों से कई निहत्थे लोग हताहत हो गए थे। इस तरह से उसने एक जल्लाद का पेशा अपना लिया था। जिसको वह कतई छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। वस्तुत: इससे उसने बहुत पैसा कमाया। सीमा पार पाकिस्तान वह चार बार गया। अब तक वह हर एक आप्रेशन में सफल रहा है। किन्तु आज बीवी की बातें सुनकर उसको लगा कि मैं गहरी नींद से बेदार हो गया हूँ। वस्तुत: सच कहती है शमीमा। आज तक मैं आज़ादी के लिए इतना लड़ा। हर क्षेत्र में तबाही मचायी। कितने निर्दोष लोग मारे गए, कितने भयानक बम-विस्फोट किए, स्कूल और पुलों को उड़ा दिया, कई बैंकों को लूटा, दिन-दहाड़े नर-नारियों का अपहरण किया, मंजे हुए राजनीतिज्ञों को गोली मारकर आखिरी नींद सुला लिया और पंड़ितों और सिक्खों को यहां से भागने पर मजबूर किया। क्या इससे हमारी कश्मीरियत पर आंच नहीं आयी ? क्या यह सच नहीं कि बनाने में कई साल लगते हैं और बिगाड़ने में एक पल भी नहीं। उस पर भी मेरी समझ में नहीं आता कि हम भारत-सरकार से क्या मांगते रहे हैं ? आज़ादी-नहीं, यह तो एक खोखला नारा है। हम कब के आज़ाद हो चुके हैं। पाकिस्तान-नहीं। जिस देश में लोकतन्त्र नहीं, वह देश कश्मीरियों को नहीं चाहिए। तो फिर हम क्या चाहते हैं ? हम किस लिए दिन-दहाड़े कत्लेआम करते हैं? नहीं, आज मैं अकरम से पूछकर ही रहूंगा। मगर वह कटु सत्य मानने के लिए तैयार नहीं होगा। वह बेकार में मेरी रोटी भी छीन लेगा और न जाने मेरे ऊपर कौन सी मुसीबतें खड़ी कर देगा। वह यही सोच रहा था कि दरवाज़े को किसी ने 'नॉक' किया।

'नॉक' की आवाज़ सुनते ही वह जान गया कि यह अकरम का बुलावा है। न जाने कौन से कुकार्य करने का आदेश देगा। आज मैं जान गया कि जो कुछ भी मैंने किया वह

सब छल है, भ्रम है, धोखाधड़ी है, निर्दोष लोगों के साथ अन्याय है। इससे हमें कुछ नहीं मिलेगा, कुछ नहीं, इसी के साथ उसने दरवाज़ा खोला। हां, यह अकरम था।

''एक जरूरी आप्रेशन करना है सुले, नहीं तो सुरक्षा कर्मी हमारे अड्डों पर छापा मारेंगे।'' अकरम ने कहा।

''करना क्या है ?''– सुले ने पूछा।

''हमें बम से पुल को उड़ाना है नहीं तो सुरक्षाकर्मी हमारे उन अड्डों तक पहुंच जाएंगे जहां हमने सिला सामान रखा है।–'' अकरम ने विस्तार से कहा।

''कौन सा पुल ?''– सुले ने पूछा

''नाले पर जो बना है, उसी को''– अकरम ने कहा।

''मगर इस गांव में बसने वालों का क्या सोचा''– सुले ने समझाते हुए कहा।

''क्यों ? क्या बात है ?''– अकरम 'फिरन के बीच में से बन्दूक की नली निकालने लगा।

''मैं कहना चाहता हूं कि यही एकमात्र पुल है जो हमारे गांव को शहर के साथ जोड़ता है। यदि इसको हम उड़ाएंगे तो बीमार गांव में ही दम तोड़ेंगे, प्रसूति प्रसव पीड़ा से मर जायेंगी और यदि गांव को आग लग जाए तो इसको बुझाने की क्या व्यवस्था रहेगी ?'' – सुले ने एक बार फिर सविस्तार कहा।

अकरम ने सुले की ओर ध्यान से देखा। उसको आश्चर्य हुआ सुले की इन बातों को सुनकर। हमारा यह जंगजू जवान बदल गया है। यह सरकार का एजेंट तो नहीं है। यह तो किसी भी वक्त हमारे विरुद्ध मुखबिरी कर सकता है। यदि ऐसी बात है तो इस पर किसी तरह का जुल्म करना ही पड़ेगा। फिर भी पहले इसके दिल को टटोलना ज़रूरी है।

''सुले, अब तक हम जिस तरह लड़ रहे हैं, वह सब व्यर्थ है ?''– अकरम ने पूछा।

''हां, हम व्यर्थ में खून-खराबा करते हैं।''– सुले का सपाट उत्तर।

आज तुमको यह क्या हो गया है ? जानते नहीं हम आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं। इसको प्राप्त करने के लिए ही हम मुसीबतों का सामना कर रहे हैं– ''अकरम ने कहा।''

''आज़ादी..... आज़ादी..... आज़ादी...... यह सुनकर हम कई वर्षों से दबे हुए हैं आप लोगों की मेहरबानी से। मुझे लगता है कि यह हमारा खोखला नारा है। आप मुझे बताइए कि कश्मीर के अपने कौन से स्रोत हैं जिनके बल पर कश्मीरियों को आज़ादी मिलेगी यहां की वह कौन सी चीज़ है जिसको पैदा करने में हम आत्म निर्भर है। हमें तो हर चीज़ बाहर से

मंगवानी पड़ती है। आज़ादी तो वह देश मांगते हैं जो जनता का पेट पाल सकें। आप ही बताइए, हमारी इस घाटी में फल और फूल के सिवाय और क्या है? हमारा सारा खाद्यान्न और अन्य ज़रूरत की चीज़ें बाहर से आती हैं। हम किसलिए अपना कीमती समय मारा मारी पर नष्ट करते हैं ? हम किस लिए अपनी सुन्दर घाटी को तबाह करने पर उतारू हो गए हैं ? सुले का ज़ोरदार भाषण।

''तुम्हारी यह जुर्रत और वह भी मेरे सामने। इसका मजा चखाऊँगा।''– अकरम चेतावनी देकर यहां से एकदम चल दिया।

''मज़ा चखाऊँगा, साला। यह मेरा कुछ भी नहीं कर सकता। यदि उसके पास बन्दूक है तो मेरे पास भी है''– सुले ने सोचा और इसी के साथ शमीमा ने कमरे में प्रवेश किया।

''चल सुले। शाहनाज़ की शादी में नहीं जाना है ?''– शमीमा अपने तिल्लेदार फिरन पहनी हुई, रेशम जैसे बालों को सजाती-संवारती हुई उसके पास आयी। सुले उसकी ओर ध्यान से देखता रहा। वह अपने आपसे कहने लगा कि शमीमा इतनी सुन्दर क्यों है ? शादी के बाद तो उस पर एक नया निखार आने लगा है। चलती है तो ऐसा लगता है कि डल-झील का साफ-शफ़ाफ पानी छोटी-छोटी लहरों में अंगड़ाइयां लेने लगता है। यदि वह कहीं जाएगी तो आंख से ओझल नहीं रह पाएगी।

''आएगा सुले मेरे साथ ?''– शमीमा ने एक बार फिर कहा।

''नहीं।–'' सुले का उत्तर।

''क्यों ?''– शमीमा का आश्चर्य।

''आज मुझे आखिरी बार लड़ना है।''– सुले ने कहा।

''लड़ना...... लड़ना.... लड़ना.....।'' अब लड़ना बन्द कर। मुझे अब तुम्हारी ज़रूरत है। शमीमा ने कहा।

मुझे भी तुम्हारी ज़रूरत है। सुले ने कहा।

''तो फिर लड़ना किस से ?'' शमीमा ने पूछा।

''अकरम से।''– सुले ने कहा।

''आय हो। ऐसा न करना। उसके पास बन्दूक है।''– शमीमा ने घबराते हुए कहा।

''तो मेरे पास क्या लाठी है ? मेरे पास भी बन्दूक है। अगर वह नहला है तो मैं भी दहला हूँ।''– सुले का सपाट उत्तर।

इतने में न जाने यह कैसे हुआ गोलियां तड़-तड़ चलने लगी। सुले ने गोलियां चलायीं मानो गोलियों की बरसात शुरू की। किन्तु भाग्य की विड़म्बना किसी ने पीछे से उसकी गर्दन पकड़ ली। उसकी आंखों में अंधेरा छा गया। बाद में जब उसने आंखें खोली तो अपने आपको अकरम के पास पाया।

सुले से बदला लेने के लिए अकरम कृत संकल्प हो गया था। उसका बदला लेने के लिए उसने शमीमा का अपहरण करवाया। इसी से सुले की ज़ुबान बन्द हो जाएगी। उसने क्या सोचा है अपने आपको ? रुस्तम का साला। उसने झट शमीमा को खींचकर उसके संगमरमरी शरीर पर हाथ फेर लिया। वह चिल्लाई। पर उसने उसका मुंह एकदम बन्द किया।

अंत में वही हुआ जो होना था। अकरम के सामने समर्पण करने से पहले वह इतना ही कह सकी– सुले को हम दोनों की लाश हवाले करना– मेरी और मेरे पेट में पलने वाले बच्चे की।

इधर तड़तड़ गोलियां चलाकर सुले ने उन सारे जंगजू जनूनियों को मारा जो अकरम ने उसको मारने के लिए भेजे थे। अब वह सिर्फ शमीमा की तलाश में फिरता रहा। गांव में यह खबर आग की तरह फैल गयी। सारे जान गए कि यह किसकी साज़िश हो सकती है किन्तु सभी की ज़ुबान बन्द थी।

दूसरे दिन ज्यों ही सुले गांव की मस्जिद में नमाज़ पढ़ने के लिए गया तो उसकी नज़र अचानक शमीमा पर पड़ी जो अर्ध मृतावस्था में पेड़ के तने से बंधी थी। सुले ने उसको रस्सी के कसाव से आज़ाद किया, तत्पश्चात् उसको दोनों बांहों में भरकर कुछ क्षण के लिए अपने बदन में गरमी-सी महसूस की। बाद में उसने उसकी ओर देखा और कहा–अकरम! बस, इस एक शब्द पर ही वह अटक गयी और हमेशा के लिए आंखें बन्द कर लीं। अलविदा!

यह देख सुले की आंखों से आंसुओं की धारा फूट पड़ी। जब वह शव लेकर कब्रिस्तान पहुंचा तो उसने मुल्ला से कहा– ''यह एक लाश नहीं बल्कि दो लाशें हैं''– शमीमा की और पेट में उसके बच्चे की।

० ० ०

संपर्क : डी-255, गली-14/15, लोअर शिवनगर, जम्मू-188 001

जंजीर

❑ जितेन ठाकुर

मिस्टर रोज़वुड़ मरना चाहते थे।

मिस्टर रोज़वुड ने मरने का तरीका और स्थान खोज लिये थे पर समय का निर्धारण नहीं कर पाए थे। इस पूरी प्रक्रिया को सम्पन्न करने में एक ही बाधा थी- नन्हा 'पामेरियन' राजल। वो राजल को अनाथ छोड़ कर मरना नहीं चाहते थे। इसीलिए रोज सुबह अपनी मौत के लिए चुने गए स्थान पर जाते और ऊँची पहाड़ी से गहरी खाई में झांकते। तब ढलवां सड़क पर लौटते हुए वे बार-बार घूम कर देखते और सोचते कि एक दिन आऊँगा जरूर पर लौट नहीं पाऊँगा। तब कौन जान पाएगा कि इस सुंदर हरियाले पहाड़ के बीच मिस्टर रोज़वुड खोए हुए हैं। सुबह की इस सैर में दाएं-बाएं सूंघता हुआ राजल नटखट बच्चे की तरह उनके आगे-पीछे भागता। रोज़वुड स्नेह और अधिकार से बार-बार पुकारते, डपते और पुचकारते।

मरने का निश्चय किए हुए काफी समय बीत गया। पर मि. रोज़वुड को कोई ऐसा योग्य अभिभावक नहीं मिला जो राजल को संभाल सके। आखिरकार एक दिन मिस्टर थामस से उन्होंने मन की बात कही। मिस्टर थामस एक सुशिक्षित एवं सभ्य पड़ोसी थे। वे ना कभी उन्हें किसी चीज के लिए परेशान करते और ना ही कभी उनकी परेशानी में शामिल होते।

''मैं मरना चाहता हूं।'' एक दिन शाम को उन्होंने थामस को टी-पार्टी पर बुलाकर अपने दिल की व्यथा- कह सुनाई।

''इसमें क्या दिक्कत है? ये काम तो कभी भी किया जा सकता है।'' थामस ने अच्छे पड़ोसी की तरह उन्हें हतोत्साहित नहीं किया।

''दिक्कत राजल की है। मेरे बाद इसे कौन सम्भालेगा।'' मिस्टर रोज़वुड ने गंभीर स्वर में कहा।

''उसकी जंजीर खोल दो। सैंकड़ों दूसरे कुत्तों की तरह ये भी पल जाएगा।'' रिचर्ड थामस किसी को सलाह देना उसकी काबलियत का अपमान समझते थे। पर अभी रोज़वुड की बढ़िया चाय और भुने हुए काजुओं का कर्ज उन पर बकाया था।

''नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता। गली के भयानक कुत्ते इसे मार देंगे।'' रोज़वुड ने कुछ नाराजगी के साथ रिचर्ड थामस को देखा। उसके बाद इस संबंध में कोई बात नहीं हुई। अलबत्ता मेहमान को गेट तक छोड़ने जाते समय रोज़वुड ने धीमे स्वर में कहा।

''मैं चाहता हूं कि आप राजल को अपने साथ रख लें।''

''...........।'' थामस मौन रहकर पहाड़ों को घूरते रहे।

''उसके लालन-पालन के लिए मैं आपको कुल जमा-पूंजी देने को तैयार हूं।'' रोज़वुड ने आखिरी पासा फेंका।

''कितनी है आपकी जमा पूंजी'' थामस बाज की तरह सतर्क हो गए।

''चालीस हजार से कुछ ज्यादा।''

''हां। इस हर्जाने के साथ इस कुत्ते को पाला जा सकता है।'' थामस ने झुककर राजल को थपथपाना चाहा पर राजल गुर्राया। थामस ने घबराकर हाथ पीछे खींच लिये।

''नाटी चैप।'' रोजवुड ने राजल को प्यार से डपटा।

''तो डील फाइनल हुई।'' चलते हुए थामस ने रोज़वुड से हाथ मिलाया।

''आप चाहें तो इसे अभी ले जा सकते हैं।'' कातर स्वर में रोज़वुड ने कहा।

''कल जब आप बैंक से लौट आएं तो इसकी जंजीर मुझे थमा दें।'' थामस ने शांत स्वर में प्रस्ताव टाल दिया।

''ओ. के. डन।''

''डन''

''गुडनाइट।''

''गुडनाइट मिस्टर रोज़वुड।'' रिचर्ड थामस लगभग उछलते हुए से लान पार कर गए और सड़क पर फिसलने लगे।

अगले दिन रोज़वुड ने लगभग ग्यारह बजे चालीस हजार रुपए के साथ राजल की चेन थामस को थमा दी। फिर एक बार प्यार से राजल को पुचकारा। रिचर्ड से हाथ मिलाया और भर्राए गले से कहा।

''बाय-बाय मिस्टर थामस। मेरे बच्चे का ध्यान रखना।''

''आप बिल्कुल फिक्र न करें। आपने राजल के लिए गलत आदमी को नहीं चुना है।'' बाय। रोज़वुड से पहले ही रिचर्ड थामस घूम गए और लम्बे-लम्बे डग भरते हुए चल दिए। राजल उछल-उछल कर अपने पुराने मालिक के पास जाने की चेष्टा करने लगा पर जंजीर उसे थामस के साथ खींच रही थी।

रिचर्ड थामस पहाड़ी टिब्बे पर बसे इस छोटे से शहर से उकता चुके थे। बीस साल से थामस और श्रीमती थामस एक अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाकर आजीविका कमा रहे थे। अपना कहने के लिए उनके पास ना जमीन थी ना मकान। बस एक ही लड़का था जिसने इस साल बारहवीं का इम्तिहान दिया था और उम्मीद थी कि पास हो जाएगा।

चालीस हजार रुपए हाथ में आते ही उनके दफन हो चुके सपनों को पंख लग गए।

लगभग दम तोड़ चुकी उनकी योजनाओं के ढेर में कुलबुलाहट होने लगी। एक अदद मकान बनाने और छोटा-सा स्कूल खोलने के लिए उन दिनों चालीस हजार रुपए एक बड़ी रकम थी। थामस परिवार के लिए तो ये डर्बी की लाटरी से कम नहीं थी। अलबत्ता डर्बी की लाटरी में जंजीर से बंधा कुत्ता साथ में नहीं मिलता।

एक सुन्दर साईनबोर्ड लगाकर तराई के छोटे से शहर में स्कूल आरम्भ हो गया।

स्कूल का आरम्भ करते हुए स्वयं मिस्टर थामस ने घंटी बजाई। थामस, श्रीमती थामस और बेटे जान ने मिलकर जोर-जोर से प्रेयर गाई। फिर ईसा मसीह को उनकी असीम कृपाओं के लिए धन्यवाद दिया। नए स्कूल की पहली कक्षा के ब्लैक बोर्ड पर लिखा गया- 'डी फार डाग'।

लगभग तीन बीघा ज़मीन पर रिहाइशी बंगले के साथ ही खोला गया स्कूल चल निकला। खर्च बचाने के लिए बेटे जान की डियूटी घंटी बजाने और बच्चों को पी. टी. कराने की लगी। श्रीमती थामस प्रिंसीपल होने के साथ ही सेंकैड और फोर्थ की कक्षाएं लेतीं। रिचर्ड थामस स्कूल का मैनेजमेंट संभालते तथा फस्ट और थर्ड को पढ़ाते। थामस परिवार के इस खुशहाल जीवन में राजल का हिस्सा महज़ रात को भौंकने और दिन में सड़कों पर घूम कर क्षुधा शांत करने का था। राजल की चेन अब गेट में लपेट कर ताला लगाने के काम आने लगी थी। अलबत्ता चमड़े का पट्टा अब भी राजल के गले में बंधा हुआ था।

जिंदगी सही ढर्रे पर चल रही थी कि एक दिन अचानक श्रीमती थामस दुनिया से विदा हो गई। यूं तो उम्र सत्तावन की थी पर विदाई का कोई अंदेशा नहीं था। थामस परिवार की तिपहिया गाड़ी का सारा संतुलन बिगड़ गया। मिस्टर थामस के जीवन में ना दोस्त थे, न रिश्तेदार और ना ही पड़ोसी। स्कूल पांचवीं तक हो चुका था। मिस्टर थामस और उनकी पत्नी दो कक्षाओं को पढ़ाते तो जान बाकी तीन कक्षाओं को पी. टी. करवा लेता। अब सम्भालना कठिन हो गया। मिस्टर थामस किसी बाहरी व्यक्ति को नियुक्त करने से कतराते थे। लिहाजा स्कूल से बच्चे निकलने लगे और धीरे-धीरे एक दिन स्कूल खाली हो गया।

हताश जान ने एक दिन पिता से कहा था

''हमें किसी टीचर को रखना चाहिए। बच्चे सम्भल नहीं रहे हैं।''

''नहीं, बाहरी व्यक्ति को अगर हम अंदर लाए तो वो हमें एक दिन सड़क पर फेंक कर सब कुछ कब्जा लेगा।'' मिस्टर थामस ने समझाया।

''इस तरह तो स्कूल बंद हो जाएगा।'' जान शंकित था।

''कोई बात नहीं। बाकी जिंदगी खाने के लिए बहुत कमा लिया है हमने।'' थामस के गुरूमंत्र ने बेटे के सामने एक नयी दुनिया का रास्ता खोल दिया। उसे समझ आ गया कि बिना काम किए भी यदि जिया जा सकता है तो फिर काम करके नाहक परेशानी उठाने की क्या आवश्यकता है।

थामस परिवार की जिंदगी अब विचित्र ढर्रे पर चल निकली। पड़ोसियों से इस परिवार के संबंध कभी भी नहीं थे। केवल बच्चों के अभिभावक औपचारिकता वश आते थे। अब वो भी समाप्त हो गया। रिचर्ड थामस न तो किसी से मिलते और नाही बंगले से बाहर निकलते। जान ज़रूरत का सामान लेने दुकान तक जाता और लौट कर बंगले के गेट में ताला लगा देता। बंगले के चारों तरफ़ की बाड़ काफी ऊंची और घनी थी– इससे सड़क चलते किसी व्यक्ति से दुआ सलाम की संभावनाएं भी जाती रहीं। अलबत्ता जान अब भी घड़ी देखकर पहले की तरह घंटी बजाता। यह उसका शौक था, या फिर चले गए बच्चों को वापिस बुलाने की कोशिश-कोई नहीं जानता।

राजल ने कब बंगला छोड़ दिया– यह भी कोई नहीं जान पाया। अंतिम बार किसी ने उसे तंदूरी चिकन के ढाबे के पास देखा था। फिर पड़ोसियों की जानकारी के अनुसार किसी फकीर को सूंघकर अचानक उसके पैरों से लिपट गया। उसके बाद से राजल लापता था। अलबत्ता, रोज़वुड द्वारा रिचर्ड थामस को, राजल की सुपुर्दगी की कहानी अब सारा मोहल्ला जान गया था।

समय के साथ-साथ शहर बदल गया। रिचर्ड थामस ने जिस सुंदर शहर में बंगला लिया था वही शहर अब कोलाहल और गाड़ियों के धुएं से भर चुका था। आबादी के भार से शहर का कौन सा हिस्सा ज्यादा दबा कोई नहीं तोल पाया। इस मोहल्ले में भी आस-पास के खाली मैदान टुकड़े-टुकड़े होकर बिक गए और वहां छोटी-बड़ी कोठियों ने सिर उठा लिया। नई कोठियों के बीच थामस परिवार का बंगला बेहद पुराना लगता।

ऐसी ही एक नयी बनी कोठी में डेविड का परिवार आया था। अक्सर इस बंगले के पास से निकलते हुए डेविड ठिठक जाते। काई से ढकी पीली पुताई के बीच में झांकती दरारें, टीन की खड़खडाती छत्त और मुरझा हुआ उदास बगीचा उन्हें आकृष्ट करता। बंगले में बार-बार बजती घंटियों का कारण एक पड़ोसी ने उन्हें बताया था। उसी के बाद रिचर्ड थामस से मिलने की इच्छा उनमें जागृत हुई थी। पर पड़ोसी ने राजल की कहानी सुनकर उन्हें रोक दिया।

वह नहीं चाहता था कि मोहल्ले में नया-नया आया डेविड परिवार, सामाजिकता भूल चुके थामस के प्रति दयावान हो।

पर डेविड नहीं माने। अपने नए मकान की पहली क्रिसमस को चर्च से लौट कर डेविड ने एक केक खरीदा और थामस के बंगले में प्रवेश कर गए। संयोग ही था कि जान इस समय सामान खरीदने गया हुआ था अन्यथा गेट का ताला डेविड के लिए नहीं खुलता। बजरी वाली चौड़ी सड़क, जो गेट से बरामदे तक जाती थी, अब झाड़ियों से ढकी हुई थी। अलबत्ता एक पगडंडी अब भी शेष थी। बंगले के बरामदे में पहुंच कर डेविड ने डोर बैल ढूंढने की चेष्टा की- पर डोर बैल नहीं मिली। अंत में डेविड ने पुराने किवाड़ों के ऊपरी हिस्से में लगे शीशों को ठक-ठका दिया।

''हू इज देयर। अंदर से चौंकी और सहमी हुई आवाज़ आई।''

''मैं डेविड हूं सर। आपका नेबर।'' डेबिड ने आदर के साथ कहा।

''क्या चाहिए तुमको ?'' आवाज़ से अनुमान लग रहा था कि व्यक्ति अपनी स्थिति से एक कदम भी दरवाजे की ओर नहीं खिसका है।

''मेरी क्रिसमस सर। मैं आपको विश करने आया हूं।'' डेविड कुछ असमंजस में पड़ गए। काफी देर कोई उत्तर नहीं आया। फिर डेविड को लगा जैसे किसी ने खिड़की का परदा हटाकर झांका है पर दरवाजा नहीं खुला। डेविड हताश होकर लौटने ही वाले थे कि ताले को कुंडे से निकालने की आवाज़ के बाद दरवाजा खुल गया।

''सारी मिस्टर डेविड। चाबी कहीं रखकर भूल गया था। खिचड़ी बाल उलझी हुई दाढ़ी और मैले कपड़ों पर झूलते घिसे हुए स्वैटर के बीच एक कृशकाय जीव खड़ा था। ये रिचर्ड थामस ही थे।''

''मेरी क्रिसमस सर।'' डेविड ने आदर के साथ केक वाला पैकेट आगे बढ़ाया।

''थैंक्यू-थैंक्यू मिस्टर--।'' थामस अचानक भूल गए कि आगंतुक ने क्या नाम बतलाया था।

''डेविड।''

''ओह। यस-यस। डेविड। मिस्टर डेविड। थैंक्यू वैरी-वैरी मच। मैरी क्रिसमस...... मैरी क्रिसमस'' झिझकते-झिझकते थामस ने केक पकड़ लिया।

डेविड को लगा कि बाहर खिली हुई धूप की रौशनी में रिचर्ड थामस की आंखें चौंधिया रही हैं। अब शायद थामस डेविड के लौटने की प्रतीक्षा में खड़े थे। पर डेविड इस प्रकार नहीं सोच रहे थे। वो सोच भी नहीं सकते थे कि क्रिसमस की शुभकामनाएं देने आए हुए

व्यक्ति को कोई अंदर आने को न कहे। अनिश्चय की स्थिति में खड़े थामस ने डेविड को लौटता न देख हताश होकर आमंत्रित किया।

''आइए। अंदर आइए।''

''थैंक्यू।'' डेविड कमरे में प्रवेश कर गए।

कमरे में नीम अंधेरा पसरा हुआ था। खिड़कियों पर मोटे बदरंग परदे झूल रहे थे। रौशनी केवल एक रौशनदान से प्रवेश कर रही थी जो बहुत ऊपर सीलिंग से चिपका हुआ था।

''बैठिए।'' डेविड एक कुर्सी पर बैठ गए। उनकी दृष्टि दीवार पर टंगे एक बड़े पोर्ट्रेट पर अटक गई। ये किसी महिला का पोर्ट्रेट था। पोर्ट्रेट के ठीक नीचे एक पलंग था जिस पर मच्छरदानी टंगी हुई थी। कभी मच्छरदानी सफेद रही होगी पर अब धूल गर्द और मैल से उसका रंग बदल चुका था। कमरे में ताजा हवा की आवाजाही न होने के कारण विचित्र सी गंध फैली हुई थी।

''ये मेरी पत्नी............ कुछ समय पहले हार्टअटैक से............।'' रिचर्ड थामस ने पोर्ट्रेट का परिचय दिया।

''ओह सो सैड।'' डेविड के मुंह से निकला। बारह साल पहले की घटना को रिचर्ड कुछ समय पहले की बात बतला रहे थे।

''आप कुछ लिखते है ? मेरा मतलब कविता गजल वगैरह।'' डेविड ने पूछा।

''आपको किसने बताया।'' रिचर्ड चौंक गए।

''ये जो कागज बिस्तर पर बिखरे हुए हैं इन्हीं से मैंने अंदाज लगाया।'' डेविड ने पलंग की तरफ इशारा किया।

हां। कभी-कभी लिखता हूं पर सिर्फ अपने और अपनी वाईफ के लिए। रिचर्ड थामस ने कुछ शुष्कता से कहा। शायद उन्हें डेविड द्वारा अंतरंगता स्थापित करने की चेष्टा पसंद नहीं आई थी।

''अच्छा शौक है।'' डेविड ने कहा। अब करने के लिए बात शेष नहीं रह गई। कमरे में नीम अंधेरे और सीलन की गंध के साथ-साथ सन्नाटा भी पसर गया। तभी कमरे में एक बूढ़े लड़के ने प्रवेश किया और डेविड को देखकर अचकचा गया।

''मीट माय सन-जान।'' रिचर्ड ने परिचय दिया।

''हैलो.....।'' डेविड ने उठकर हाथ मिलाया। जान अभी भी कुछ असमंजस और संशय में खड़ा था।

''क्या टाईम हुआ पापा ?''

''इटस टवैल्व थर्टी।'' रिचर्ड ने जेबी घड़ी निकाल कर देखी और वापिस जेब में रख ली।

''बैल बजा दूं।''

''हां...... हां। और तुम बाहर के गेट में ताला लगा आए होगे। मिस्टर डेविड जाना चाहते हैं। ताला खोल दो।''- जाने के लिए किया गया ये एक इशारा था। डेविड उठ गए। क्रिसमस के दिन भी ये स्कूल चल रहा था- बिना बच्चों का स्कूल। जान बाहर जाकर घंटी बजा रहा था- छुट्टी की घंटी जो लगातार दो मिनट बजती रही थी।

''अच्छा सर। अब मैं चलता हूं।''

''ओ. के.। ऐज यू विश।'' रिचर्ड ने उदासीनता से हाथ आगे बढ़ा दिया।

''कभी आइए हमारे यहां। हो सके तो आज शाम ही आइए। क्रिसमस पार्टी में आपसे मिलकर सबको खुशी होगी।'' डेविड ने बिखरते शब्दों को जोड़ने की अंतिम कोशिश की।

''काम बहुत है- बहुत काम है। सारी।'' रिचर्ड ने टका सा जवाब दे दिया।

डेविड कमरे से बाहर निकले तो रिचर्ड थामस ने जल्दी से दरवाजा बंद कर लिया। औपचारिकता निभाने के लिए भी वो बाहर नहीं आए।

डेविड झाड़ियों ने बीच बनी पगडंडी से लौटकर गेट तक पहुंचे जहां जान उनकी प्रतीक्षा में खड़ा था। डेविड के बाहर निकलते ही जान ने गेट में जंजीर फांस कर ताला लगा दिया और बंगले की तरफ घूम गया।

बुझे मन से डेविड बंगले का आधा चक्कर लगा कर बंगले की पिछली सड़क पर पहुंच गए। इसी सड़क पर उनका मकान भी था। बंगले से रिचर्ड थामस के चीखने की आवाज़ आ रही थी।

''बेवकूफ। जहर होगा केक में- जहर। हमें मारकर सारी जायदाद लूट लेगा वो। समझा।'' शायद जान ने केक खाने की कोशिश की थी। तभी धप्प की आवाज के साथ कोई चीज़ डेविड के ठीक सामने आकर गिरी। हैरान डेविड ने देखा कि ये उन्हीं के द्वारा दिए गए क्रिसमस केक का पैकेट था।

डेविड को लगा कि रोज़वुड ने बैंक से लौटकर जो चेन रिचर्ड थामस के हाथ में पकड़ाई थी, वो राजल के गले से खुलकर अब थामस परिवार के गले में लिपट चुकी है।

° ° °

संपर्क : 4 ओल्ड सर्वे रोड, देहरादून- 148 001

मेरी पुंछ को क्या हो गया ?

❑ राज भल्ला

खानों में तो हीरे मिलते ही है पर धरती के हीरे कहां मिलेंगे, ये सियासतदान जिन्होंने विभाजन माना, अब फिर एक हो रहे हैं पर मैं जिसने सदा इसका विरोध किया अपने ही देश में विभाजित जीवन जीने को विवश हूं।

फिर एक ज़ोरदार ठहाका– ऊँ हूं.... जी नहीं रहा, मात्र सांस ले रहा हूं। पर सांस तो धौंकनी भी लेती है, तो क्या मुझे धौंकनी नाम से जानना पसन्द करोगे ?

बहुत कुछ देखा पर कई प्रश्नों के उत्तर अभी भी नहीं मिल रहे। हाय! कहां है मेरा प्यारा बटुकेश्वर दत्त जिसने हाल ही में अपने सम्मान में दिए गए दुशाले को लेने से इन्कार करते हुए कहा– सारी जिन्दगी तो अन्डेमान की दहलीज पर काट दी अब दुशाला लेकर क्या करूंगा ?

वस्तुत: अब मेरे साथी छूट गए हैं। उनके बिना कुछ पगला-सा गया हूं। शायद इसीलिए अपने ननिहाल पूंछ आकर रहना पसन्द किया।

इधर धरती के हीरे भक्त सिंह और बटुकेश्वर दत्त तो नहीं हां युवकों की कई टोलियां आज भी मेरे घर से होकर गुजरती हैं। इन्हें देखकर कई प्रशन मस्तिष्क में कौंध जाते हैं। भला क्यों युवक गला फाड़ता है ?

क्यों चाकू चलते हैं ?

क्यों शराब बन्द नहीं होती ?

क्यों शरीर बेच धन्धा जोरों पर है ?

आज़ादी के पचपन वर्ष बाद भी अनुत्तरित प्रशन उफ! कैसे जी रहा हूं इन प्रश्नों के घेरे में। इन्सान की अपनी ज़िन्दगी के प्रशन ही उसे परेशान कर देते हैं पर जो लाखों, करोड़ों जिन्दगियों के प्रश्न अपने साथ टांग बैठा हो उसका क्या हाल ?

मैं मोहनसिंह आज बावन वर्ष का जीवन जी रहा हूं। पूंछ की चप्पा-चप्पा भूमि से परिचित हूं। मेरी आंखों ने पुरानी और नई पूंछ का सब कुछ देखा है। बच्चों की कई टोलियां मेरे सामने ही जवान हुईं और ब्याही गईं। बड़ी छोटी-छोटी बातें याद आती हैं तो फिर एकान्त में चलते फिरते न जाने कितनी बार कह देता हूं– हाय मेरी पुंछ को क्या हो गया ?

यादों के इस सिलसिले में फव्वारा गार्डन के पास छोड़ी गई आतिशबाजी का दृश्य याद आते ही वह कुछ देर के लिए वहीं ठहर गया।

पर यह क्या! उसी सड़क पर अठारह, बीस बरस के दो नौजवान दौड़ते हुए कहे जा रहे थे– भागो... भागो..... किले के नीचे बम फटा है, चार घायल और दो की मौत। मुड़ कर देखा तो पीछे धरना देने वालों का हजूम। नहीं चलेगी। नहीं चलेगी, बेइन्साफी नहीं चलेगी के शब्दों का शोर!!

सैंकड़ों आवाजों का शोरगुल सुनकर मोहन सिंह ने अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरा- उसकी आंखें अंगार उगलने लगीं। इस समय उसे फिर अपने वतन के भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त और भी न जाने कितने नौजवान याद आ रहे थे जिन्हें छोड़कर वह अपने ननिहाल पूंछ आ गया था। एक बार पूंछ क्या आया कि उसने मुड़कर जाने का नाम तक न लिया!!

कल ही तो झूला पुल के पास एक बोरी पीठ पर लादे देखकर मैं ठिठक गई। उसके पांव बोझ के मारे लड़खड़ा रहे थे। नाम न जानते हुए भी बुला लिया– अंकल! बोरी उठाने के लिए एक मज़दूर कर लेते न!

बेटी! यह पूंछ है। यहां सभी अपने हैं। किसे मज़दूरी के झंझट में डालता। मज़दूरी करवा तो लेता पर मज़दूरी लेता कौन ''यहां तो सब के सम्बन्ध राम लखन से हैं।''

हूं.......। तो क्या बोरी में भरी चीज़ें बाल बच्चों की फरमाइश है ?

बड़े भारी मन से इन शब्दों को सुनते हुए उसने आगे बढ़ने की की और मैं बैठी-बैठी उसके पदचाप से अधिक ठहाकों की आवाज़ सुनने लगी। अजीब मस्खरा है, बात कम और हंसी की गड़गड़ाहट अधिक। तो होगा कोई नीम शैदाई।

नीमशैदाई नहीं, पूरा शैदाई कहो तो बात बनती है। बेटी कहो, कहो न क्यों झिझक रही हो ?

मैं मन ही मन क्षमा याचना के अतिरिक्त भला कर ही क्या सकती थी ? इस वक्त हम दोनों के बीच काफी फासला था तो भी सरसराती हवा के साथ जो शब्द मेरे कान में पड़े वे थे– ''सच जानों वतन की यादों को दिल में समोए हम शैदाई ही तो हैं, तभी तो ब्रिटिश सरकार से लेकर अब तक की अपनी सरकारों ने भी हमें इसी नाम से जानना चाहा। बस फिर ज़ोर से हंसते हुए वह बहुत दूर निकल आया। अच्छा तो चाल, ढाल से सीधा सादा दिखने वाला यह आदमी पढ़ा लिखा लगता है। कुछ देर रुकने की इच्छा थी पर इधर सूर्य ढलते देखकर मैंने घर जाना ही ठीक समझा।

शायद कल वाला हजूम आज भी नारेबाजी कर रहा है। सुना है बाज़ारों में पुलिस आ धमकी, गलियों तक में गोलियां चलीं। वह बेचारी शोरगुल सुनने ऊपर चढ़ी ही थी कि नाहक

मारी गई!!

रे पुलिस ने भी तो हद कर दी–ड्यूटी समझ कर नहीं, अपनी कड़वाहट निकालने के लिए एक के बाद दूसरी गोली चलती गई!!

बिन मोल ही जिसने अपने को समर्पित कर दिया– लो उसकी लाश की कीमत एक लाख पड़ गई। गुरु निवास के पास अंधेरी सांकरी गली में हुई फायरिंग से वासन्ती की मौत से कुछ देर के लिए पूंछ का जनजीवन थम-सा गया। पर दूसरे ही दिन शोरगुल का कोई नाम ही नहीं। अब तो लोगों की जुबान पर एक लाख की चर्चा है।

लगता है आज़ादी के बाद ज़िन्दगी की नहीं, मौत की कीमत बढ़ रही है। आखिर कब तक सरकार ऐसा पाएगी ?

हिंसा, अपहरण, फिरौतियां, पलायन की घटनाएं, रिश्वतखोरी, अव्यवस्था और महंगाई न जाने किन-किन धब्बों से नौकरशाही का चेहरा दागोदाग बना है। कहीं ये बड़ी-बड़ी राशियां घोषित करना उन दागों की धुलाई का उपक्रम तो नहीं ? कितनी अजीब बात है, जो बच्चों को पढ़ा न सकी, बीमार बहू को दवा तक मय्यसर न करा सकी, पुलिस की अन्धाधुंध फायरिंग ने उसे लाश बना दिया और उसकी कीमत एक लाख पड़ गई।

गुरु निवास के साथ वाली गली में अब भजन-कीर्तन की बजाय गोलियों की ठसाठस सुनकर अनायास ही कह उठता हूं– हाय। मेरी पूंछ को क्या हो गया?

सोचता हूं, इस तरह कब तक सरकार मौत की कीमत अदा करती रहेगी ? ज़िन्दगी की कीमत बनाए रखना उसे क्यों गवारा नहीं ? भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त के ज़माने में तो जिन्दगी की कीमत पड़ती थी पर इधर कुछ वर्षों से रिवाज़ सा बन गया है कि–

पुलिस फायरिंग से मरो तो लाख–

खानों में धंस के मरो, तो लाख–

और भी न जाने कैसे-कैसे मरो तो लाख। लगता है मरने का इन्तज़ाम है पर जीने का इन्तजाम इस देश में कहीं नहीं। तमाम लोगों की ज़िन्दगी और प्रतिष्ठा दाव पर लगी है पर उसकी ज़िन्दगी और प्रतिष्ठा का किसे ध्यान है।

मैंने सरकारी नौकरी की है। देखने में यही आया है कि बड़े लोग विशेषाधिकारों के मुद्दे उठाते रहते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है– उन सभी नियमों और कानूनों से अपने को मुक्त समझना, जो आम लोगों पर लागू होते हैं।

अब कोई भगत और बटुकेश्वर तो रहा नहीं जो इन बड़े लोगों की कटु आलोचना करे। बस इसी शहरी ज़िन्दगी से तंग आकर मैं पुंछ आ गया।

इन ख्यालों में उलझे हुए भी सहसा मुझे पुल पार की उस लड़की की याद आई जो कह रही थी– "अंकल। बोरी उठवा लेते न।"

दरअसल उस लड़की ने अपनी मिट्टी में विदेशी फूल उगते देखे थे। पुंछ की मिट्टी की सौंधी खुशबू अभी उसकी रग-रग में समाई नहीं। वह किसी की मेहनत या सेवा का बदला चन्द सिक्के देकर चुकता करने की अभ्यस्त है पर मैंने तब और अब भी दोनों पुंछें देखी हैं।

पंजाब से आया मैं अब यहीं का होकर रह गया हूं। हां एक बात तो बराबर कचोटती है वह है शिक्षा के लिए खुलने वाले स्कूल कालेज के साथ ही लोगों का सारा सिलसिला ही क्यों बदल गया ?

मक्की की रोटी और लस्सी पिलाने की जगह आव भक्त में लोग अब चाय पिलाने लगे हैं। चाय कहते ही मुझे बशीर अहमद की शादी में ढोलक पर गाया गीत याद आ गया–

"अद्धी कड़छी दुध दी, पतीला पानी दा।

कित्थों स्वाद पै गया इस खसमाखानी दा।"

हाय गीत में भी वही विवशता जिसमें लोग जी रहे हैं। खान पान ही नहीं सब कुछ बदल गया है। क्या कभी पहले किसी ने सुना था कि अपने सिपाहियों द्वारा अपने ही लोगों की हत्या ? नाहक निदोर्षों की मौत ? भला वासन्ती का क्या दोष था ? नारेबाजी, होहुल्लड़ तो कालेज के छोकरे कर रहे थे।

लगता है जुलूस, रैलियां, हड़ताल और चक्काजाम यह है लोगों की एक्टीविटी और अन्धाधुन्ध फायरिंग, दस-दस शहरों में एक साथ कर्फ्यू ये हैं सरकारी हरकतें!! कहां गया वह वक्त जब अपराधी और न्यायिक के बीच बात आमने सामने बैठकर होती थी। पुंछ के प्रतिष्ठित नागरिक बख्शी चन्दलाल पर चलाया गया मुकद्दमा तो आज भी घर-घर का किस्सा बन चुका है। अपनी मानहानि के विरुद्ध बख्शी साहब की हकूमत से लड़ी गई खामोश जंग की कहानी आज भी लोग अपने बेटों को सुनाते हैं। क्या गज़ब का आदमी था– अपना भी मान रख लिया और राजा साहब को भी क्षमायाचना के लिए मजबूर कर दिया पर क्या मज़ाल कोई जलूस या नारेबाजी आज की तरह हुई हो।

हाय, क्या हो गया मेरे पुंछ को– शान्ति का नाम नहीं नित्य नई आतंकवादी घटनाओं के अतिरिक्त वैसे भी हवाएं अब गरमाई ही रहती हैं। किसी तरह का भाई चारा अब कम ही नज़र आता है।

शकीला और शमशाद बेशक मुझ से अपनी बेटी की शादी का निमन्त्रण पत्र न भेजने का गिला करते हैं पर मैं उनके इस मीठे उलाहने को सहज नहीं ले पा रहा। माहौल से पगलाया मैं भी तो अपनी पुंछ को वैसा नहीं देख पा रहा।

मेरे साथी भगत और दत्त के सम्बन्ध तो सब के साथ सियासत से ऊपर उठकर थे। याद है उनकी शहादत पर समान रूप से बहे हिन्दू, मुसलमान के आंसू। पर अब यहां जाओ सियासत ही का बोलबाला है। मन्दिर, गुरुद्वारे और मस्जिद तक इस से मुक्त नहीं फिर दफ्तर और कचहरी की तो बात ही क्या!!

सियासत शब्द कहते ही मुझे इस बला से कोसो दूर कुछ ऐसे युवकों की याद आई जिनका गीता भवन पुंछ में खासा प्रभाव था। मास्टर राम, बख्शी मोती राम, प्रो. कृष्ण लाल, डा. विष्णु दत्त आदि को क्या लोग भूले होंगे ? पहले दो तो खुदा के प्यारे हो गए पर शेष के बारे में सुना है कि मेरी तरह वे भी बेचैन हैं। पुंछ को ऐसा देख कर।

याद है इग्लिंश के प्रो. कृष्णलाल ने पढ़ाते वक्त युवकों को अपने देश का प्रति वफादारी की दो सतरें क्या सुनाई कि दूसरे ही दिन पाक रेडियो ने उस बेचारे को भड़काऊ प्रोफेसर का नाम दे दिया।

खबर तो सबने सुनी पर कोई जलसा नहीं, कोई जलूस नहीं और न ही कोई जिन्दाबाद मुर्दाबाद की नारेबाजी!!

भड़काऊ कहे जाने वाला प्रोफेसर ही जब विद्यार्थीयों को पढ़ाई छोड़कर सड़क पर जाने से रोके तो क्या बात सिरे चढ़ेगी ?

पर अब तो पुंछ में भी हर बात सियासत की तराजू पर तुल कर ही बाहर आती है। और तो और पिछले दिनों चिनार के बूटे को रखने और लगाने पर तो हद ही हो गई!!

दरअसल अब सियासत का नुक्ता काम कर रहा है। तभी तो ज़िन्दगी की कीमत कम और मौत की कीमत बढ़ रही है। सच ही अब मेरे अनुत्तरित प्रश्न उत्तर पाने लगे हैं।

समझने लगा हूं कि क्यों युवक गले फाड़ते हैं ? क्यों चाकू चलते हैं, क्यों शरीर बेच धन्धा चलता है और फिर क्यों शराब बन्द नहीं होती ?

सचमुच इस धरती ने बहुत कुछ खो दिया है। भले ही मक्की, चावल और खुम्भ की उन्नत बनकी देख रहा हूं पर भाई चारे का, मीठी हवा का कोई झोंका प्यार और हमदर्दी का कोई ठन्डा स्रोत ढूंढे से नहीं मिल रहा और न ही मिल रहे हैं सियासत से ऊपर उठ कर किए जा रहे ज़िन्दगी के फैसले।

तभी तो कहता हूं– हाय! मेरी पुंछ को क्या हो गया ?

० ० ०

संपर्क : राज भल्ला, 386 रिहाड़ी कालोनी, जम्मूतवी।

बुज़दिल

❑ दीदार सिंह

जब मेरी नीरा से शादी नहीं हुई थी तब मेरा स्वभाव ऐसा न था। कोई चिन्ता न थी, कोई दायित्व न था पूर्णत: स्वतन्त्र था। क्या मजाल कोई ऊंची-नीची बात कर जाए। गर्दन से पकड़ लेता था, बात कहने वाले को। शादी के बाद भी स्वभाव में थोड़ी देर तेज़ी रही- लेकिन बाद में धीरे-धीरे ऐसा परिवर्तन आया कि इस परिवर्तन से मुझे स्वयं झुंझलाहट होती है। यह आयु का प्रभाव है अथवा बढ़ते हुए पारिवारिक दायित्वों का, समझ नहीं पाया। अब तो हर बात के लिए नीरा की ओर निहारना पड़ता है- वही मेरी सीढ़ी और वही मेरे संकट का निवारण करती है।

बेचारी नीरा !

शादी के बाद एक बार जब सिनेमा देखने गए तो टिकटों के लिए भीड़ बहुत थी। तब मैंने ये टिकटें लेने के लिए नीरा को आगे कर दिया था। उस दिन पहली बार मुझे लगा था कि मेरी मर्दानगी पर कोई प्रहार हुआ है। फिर तो जहां भी लंबी कतार या भीड़ होती- चाहे सिनेमा का टिकट लेना हो या रेल अथवा बस का- तो नीरा को ही स्त्रियों की पंक्ति में खड़े होना पड़ता। धीरे-धीरे मेरे लिए यह सामान्य बात होती गई और मेरी मर्दानगी भी कहीं लुप्त हो गई।

मैं तो बस दफ्तर जाता हूं और आकर मज़े से बैठा रहता हूं। कभी अख़बार पढ़ लिया या किसी मित्र के साथ गप्पें हांक लीं और कभी-कभी बच्चों अथवा नीरा पर रौब डाल लिया। मैं जानता हूं कि अब नीरा मेरे रौब में नहीं है लेकिन वह मुझे इस भ्रांति में रखकर खुश है कि वह मुझ से डरती है।

मुझे उस पर दया तो बहुत आती है- उसके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है- लेकिन मैं उसके लिए कुछ कर नहीं पाता। बेचारी प्रात: सबसे पहले उठती है और रात को सब के बाद में सोती है। प्रात: उठकर बच्चों को तैयार करना, उनके लिए नाश्ता बनाना तथा दोपहर का खाना बनाना, फिर दफ्तर जाना, शाम को आकर घर का सारा काम संभालना, कपड़ों की धुलाई, मेहमानों की देख-भाल, फिर बच्चों को भी पढ़ाना फिर भी उसके माथे पर कभी बल नहीं देखा, कभी उसने शिकायत नहीं की, सारे काम इतनी सफलता से निपटा देती है, जैसे उसके लिए यह साधारण सी बात हो। न जाने कब वह विश्राम करती है। मैं जानता हूं मेरी कुछ बातें उसे अच्छी नहीं लगतीं, फिर भी बिना माथे पर बल डाले वह मेरी इच्छा का पालन करती है और मेरी पदोन्नति में मेरे परिश्रम का उतना योगदान नहीं जितना नीरा का है।

विवाह के बाद जब पहली बार मैंने अपने कुछ मित्रों अथवा बॉस को पार्टी पर बुलाया था, नीरा ने उनकी ऐसी सेवा की कि प्रशंसा करते नहीं थकते थे। मेरा बॉस तो नीरा के स्वभाव तथा बर्ताव से बहुत प्रभावित हुआ था। तभी मैंने सोच लिया था कि मेरा जीवन संवारने में नीरा मेरे बहुत काम आ सकती है। मैं प्राय: घर में पार्टियां देने लगा था, या दूसरों की पार्टियों में नीरा को साथ ले जाता। वह मेरे मित्रों से बहुत घुल-मिल गई थी। उन्नति की पहली सीढ़ी तो मैंने तभी से चढ़नी शुरू कर दी थी, जब एक बार नीरा ने मेरे बॉस से एक पार्टी में मुस्करा कर कहा था, ''सर, ज़रा इनका भी ख्याल रखा करें, बहुत ईमानदार और मेहनती वर्कर हैं।''

अफ़सरों को खुश करने का बहुत ही आसान तरीका मेरे हाथ लग गया। बस ज़रा घर में निमन्त्रित कर लिया, या स्वयं उनके घर चले गए। अब तो मेरा बॉस आता है तो मैं जान-बूझकर घर से खिसक जाता हूं। मुझे मालूम है कि बॉस को नीरा की कम्पनी बहुत पसन्द है– उससे बातें करके वह बहुत खुश होता है। कभी-कभी कोई वस्तु भेजने के बहाने मैं स्वयं ही नीरा को बॉस के घर भेज देता हूं।

नीरा से कोई थोड़ी-बहुत बदतमीजी कर भी ले मुझे गुस्सा नहीं आता। मैं उस ओर से आंखें ही फेर लेता हूं। मुझे मालूम है और विश्वास है कि नीरा अपनी रक्षा करना जानती है। शुरू-शुरू में मुझे गुस्सा ज़रूर आता था कोई ज़रा आंख उठाकर नीरा की ओर देखता तो उसकी आंख निकालने पर उतर आता था। अब तो बसों में, बाज़ार में, सिनेमा में कितनी ही बार मेरे देखते-देखते नीरा से छेड़-छाड़ हुई– मैं उसे पी जाता हूं। कौन गुण्डों के मुंह लगकर और अधिक बेज़्ज़ती करवाए।

किसी के साथ झगड़ना हो, बहस करनी हो तो भी नीरा को ही आगे कर देता हूं। उसे खरी-खरी सुनानी आती है और दूसरों को दलीलों से कायल भी कर लेती है।

एक दिन बॉस के घर बहुत मेहमान आ गए तो मैंने नीरा को वहां हाथ बंटाने के लिए भेज दिया। नीरा बहुत साहसी स्त्री है। मुझे उस पर पूरा भरोसा है कि वह अपना बचाव करना जानती है मुझे दृढ़ विश्वास है कि वह कभी भटक नहीं सकती। वह कभी मुझ से धोखा नहीं करेगी। कभी अपने आदर्श से नहीं गिरेगी। तभी तो मैंने उसे इतनी ढील दे रखी है, उस पर कोई अंकुश नहीं लगाया– कभी उस पर शक नहीं किया। नहीं तो क्या मैं बॉस की आदत से परिचित नहीं। मैं उसकी कमज़ोरियों को जानता हूं। उन कमज़ोरियों का लाभ उठाकर ही तो मैंने इतनी उन्नति की है और आफिस में अपनी साख़ जमाई। सभी जानते हैं कि बॉस मेरी बात कभी नहीं टालता। भले ही वे सब मुझे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते और मैं जानता हूं पीठ पर वे मुझ पर उंगलियां भी उठाते होंगे। लेकिन मैं उनकी परवाह करूं या अपने भविष्य की।

× × ×

मैं प्राय: सोचती हूं वह जगदीश कहां खो गया जिसमें इतना गुस्सा होता था, जो बहुत अग्रैसिव हुआ करता था। शुरू-शुरू की एक घटना याद आती है-एक भीड़ में एक व्यक्ति मेरे से ज़रा घिसड़ कर निकला था तो जगदीश ने उसे गर्दन से पकड़ लिया था। वहां अच्छी खासी भीड़ जमा हो गई थी और वह व्यक्ति बड़ी मुश्किल से जान बचा कर निकला था और अभी परसों की बात है एक व्यक्ति ने जान-बूझकर मेरे पांव पर अपना पांव रखा और मेरी चीख निकल गई तो जगदीश ने मुझे ही डांटना शुरू कर दिया कि तुम देख कर नहीं चलती। उस मुश्टंडे को कुछ भी नहीं कहा जो जान-बूझ कर मेरा पांव मसल गया।

अब तो कोई मुझ से बदतमीज़ी करे तो मैं जगदीश को बताती ही नहीं, उससे खुद ही निपट लेती हूं। मैं जानती हूं कि यदि उसे बताऊंगी तो उसमें कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। जब वह कुछ नहीं कर पाता तो मुझे लगता है वह आत्म-ग्लानि से पीड़ित होता है। उस समय उसकी दशा देखी नहीं जाती-बहुत दयनीय होती है। यों तो वह सिग्रेट कम पीता है, लेकिन जब पीता है तो उसके अन्दर की स्थिति का अनुमान लगाना बहुत सरल है। मूड में अथवा प्रसन्नता की स्थिति में वह बड़े मजे-मजे सिग्रेट के कश लगाता है लम्बे कश। बड़े आराम से सिग्रेट पीता है।

और जब परेशानी अथवा आत्म-ग्लानि की अवस्था में हो तो जल्दी-जल्दी सिग्रेट के कश लगाता है। कभी तो छत्त या आकाश की ओर निहारता रहेगा और तेज़-तेज़ कश लगाता जायेगा। नहीं तो एक ही स्थान के तेज़-तेज़ चक्र लगाएगा।

समय कितना बलवान है- समय कितना परिवर्तनशील है। समय व्यक्ति के स्वाभिमान को कैसे कुचल के रख देता है। जगदीश में यह परिवर्तन एक दम नहीं आ गया। धीरे-धीरे इस परिवर्तन को आते कई वर्ष लगे। और अब लगता है कि उसके स्वभाव में एक ठहराव-सा आ गया है।

शायद इसी लिए प्रौढ़ व्यक्तियों को अधिक दायित्व सौंपे जाते हैं क्योंकि उन्हें गुस्सा जल्दी नहीं आता। गुस्से में व्यक्ति होश खो बैठता है और दूरदर्शिता से बिल्कुल काम नहीं लेता। जिसका परिणाम उसे बाद में भुगतना पड़ता है। जगदीश को भी अब गुस्सा बिल्कुल नहीं, अथवा बहुत कम आता है। गुस्से के स्थान पर खीझ, झुंझलाहट होती है जिसका अर्थ है स्वयं अपने पर ही गुस्सा आना।

एक बार की बात है- बहुत पहले की शायद हमारी शादी के थोड़ी देर बाद की हम लोग रात को एक सड़क पर टहल रहे थे। सड़क पर और कोई नहीं था। इतने में आगे से तीन चार गुण्डे किस्म के लोग पास से गुजरे और उनमें से एक ने कोई भद्दे किस्म का फिकरा कसा। तब मैं उस फिक्रे का अर्थ भी नहीं समझ पाई थी। जगदीश ने लपक कर उस व्यक्ति को गर्दन से पकड़ लिया। लेकिन वे इतने जने और जगदीश अकेला। जिस व्यक्ति को इसने

गले से पकड़ा वह भी खूब हट्टा-कट्टा था। उस अकेले ने ही जगदीश को धक्का देकर नीचे गिरा दिया। इससे पहले कि जगदीश उठकर इस धक्के का जवाब देता उनमें से तीन व्यक्तियों ने जगदीश को पकड़ कर पीछे को धकेल दिया और बोले, ''ए बाबू। क्यों हड्डियां-पसलियां तुड़वाने का इरादा है।''

''अपना रस्ता नापो दारा सिंह जी, आपको किसी ने बुलाया है ?''

''आया बड़ी पहलवानी दिखाने, यह पहलवानी अपनी इस छमक-छल्लो को ही दिखाओ।''

मैंने जगदीश का हाथ पकड़ लिया और इसे खींचकर आगे ले गई, ''छोड़ो भी अब क्यों इनके मुंह लगते हो।''

तब मुझे पता लगा वह भीतर से आग की भांति सुलग पड़ा था। लेकिन विवश था। गुस्से को भीतर ही भीतर पीकर मेरे साथ चल पड़ा। कितनी देर हम खामोश चलते रहे। कोई कुछ नहीं बोला।

लेकिन इस घटना के बाद कितने दिन वह मुझ से आंख नहीं मिला सका, जैसे स्वयं को मेरा अपराधी मान रहा हो। इसके बाद कई ऐसी घटनाएं हुईं और जगदीश की भी इन घटनाओं को झेलने की आदत-सी बन गई।

तभी एक दिन इसके बॉस के लड़के के जन्म दिन पर हमें वहां जाना पड़ा। लेकिन वहां इसके बॉस का मुझे घूर-घूर कर देखना अच्छा नहीं लगा। मैं चाहती थी कब वहां से घर लौटे। लेकिन बॉस इसे बातों में उलझाए जा रहा था और साथ-साथ जाम के दौर भी चलने लगे।

वापसी पर, इसी बात पर हमारे बीच थोड़ी तल्ख़ी भी हो गई।

''अब एक दिन बॉस को भी निमन्त्रित करना होगा,'' उसने जलती पर जैसे तेल डाला।

''किस लिए।'' मैं तुनक कर बोली।

''बॉस ने हमारी इतनी ख़ातिर की हो हमारा भी फर्ज बनता है उसे बुलाकर उसकी ख़ातिर करें।''

''यानी उसे बुला कर शराब पिलाओगे।''

''ओ कम आन नीरा, क्या दकियानूसी बातें करती हो। भई शराब तो अब शिष्टाचार का एक हिस्सा है।''

''मुझे नहीं चाहिए ऐसा शिष्टाचार।''

''लेकिन मुझे चाहिए। वह मेरा बॉस है। तुम जानती हो अगर वह हम पर मेहरबान हो जाए तो हमारे बारे न्यारे हो सकते हैं।''

फिर ऐसा ही हुआ। बॉस हम पर मेहरबान हो गया। जगदीश की पदोन्नति हुई। बॉस का आना जाना शुरू हुआ। मेरे घर में ही शराब के दौर चलने लगे। बॉस ने पहले मेरे खाने की प्रशंसा शुरू की, बढ़ते-बढ़ते, मेरे घर सजाने की, मेरे स्वभाव की और अब..... अब मेरी सुन्दरता की प्रशंसा करने लगा है।

कभी-कभी मेरा धैर्य टूटने लगता है। फिर मुझे जगदीश का ध्यान आता है। इसके बॉस ने भी मुझ पर कितने ही जाल फेंकने के प्रयास किये लेकिन मैंने भी पैरों पर पानी नहीं पड़ने दिया। और उसके साथ बिगाड़ी भी नहीं। गुस्सा तो मुझे उस समय आता है जब मुझे घर में बॉस के पास अकेली छोड़ कर कोई वस्तु लाने के बहाने जगदीश घर से खिसक जाता है।

तब मुझे भीतर ही भीतर बहुत भय लगता है। पुरुष के भीतर छिपे राक्षस का क्या भरोसा। तब मैं ऊपर से मुस्करा रही होती हूं और भीतर से रो रही होती हूं। कितनी बार ऐसा अभिनय कर चुकी हूं। न जाने जगदीश को मुझ पर इतना विश्वास क्यों है- इतना भरोसा क्यों है। काश उसे मुझ पर इतना विश्वास और भरोसा न होता। काश वह शक्की स्वभाव का होता तो मुझे पल भर के लिए भी अकेली न छोड़ता। काश वह छुप-छुप कर मुझ पर नज़र रखता- यों मुझे उसका हर समय संरक्षण प्राप्त रहता। वह आम लोगों जैसा नहीं रहा। कभी मुझे उस पर दया आती है- तरस आता है- कभी खीझ आती है और कभी उसके प्रति श्रद्धा होने लगती है। क्या वह मुझे महान् बनाना चाहता है या स्वयं महान् बनना चाहता है।

वह दिल का बहुत अच्छा है- बहुत उदार है और निश्छल हृदयी है। लेकिन कभी-कभी उसकी झुंझलाहट और आत्म-ग्लानि से लगता है कि वह और कुछ नहीं केवल बुज़दिल है, बुज़दिल!

○ ○ ○

संपर्क : *613/3 गुरू नानक नगर, जम्मू।*

टूटते अहसासों का कारवां

❑ अशोक जेरथ

धूम-धड़ाके में उसकी नींद खुल आई थी। शोर शराबे में पहले वह कुछ समझ नहीं पाया थोड़ा चेतनशील होने पर उसने देखा कि अपने बनाए हुए संगीत के साजों पर कुछ लड़के थाप दे रहे थे और बाकी उसी लय पर नाच रहे थे। थाली, प्लेट, चम्मच, खाली डिब्बा, पेटी आदि साजों पर तालबद्ध संगीत का प्रवाह हो रहा था और जाती संध्या के धुंधलके में थिरकते हुए उनके जिस्मों के साए भूतई लग रहे थे। उसने कराह-कर करवट लेनी चाही पर घुटने में अथाह दर्द, पांव में जलन, तपता हुआ जिस्म, जबाव दे रहे थे। प्रयास कर अपने जिस्म को मोड़ और थोड़ा उनकी ओर उन्मुख हो आया। वे सब मस्त होकर नाच रहे थे। एक सिगरेट चारों ओर घूम रहा था। एक-एक कर वे खींच कर कश लेते और दूसरे के हाथ में उसे थमा देते। वह देखता रहा मीलों का सफर पैदल तय कर वे सब पिण्डारी ग्लेशियर के साहसिक अभियान को कवर कर अभी एक घंटा पहले ही लौटे थे। यह उनका अंतिम रात्रि पड़ाव था- लोहाखेत। वह इस अभियान में आगे ही रहा था पर बीच में हवा लग जाने से बीमार हो आया- अंतिम 12 किलोमीटर का सफर उसे जैसे ज़िन्दगी का अंतिम सफर प्रतीत हो रहा हो- ख़त्म ही नहीं होने को आ रहा था। डाकबंगले पहुंचने से लगभग डेढ़ किलोमीटर पहले ही वह बुरी तरह थककर निढाल हो चुका था- तंग रास्ते के पास बने ऊंचे स्थान पर लेटा सुस्ताता रहा था। डूबते सूरज की ठंडी तपिश उसे सहलाती रही थी। धीरे-धीरे ठण्डक बढ़ने लगी थी। चलते-चलते उभरी गर्मी में उसके ज़ख्मी जिस्म की पीड़ा जो दबी पड़ी थी अब फिर उभरने लगी थी। उसका सारा जिस्म फोड़े की तरह दु:ख रहा था। अचानक अपनी मस्ती में नाचते हुए लड़कों में से पाश की नज़र उस पर पड़ी वह पल भर को ठिठक गया था फिर धीरे से उसके पास आकर खड़ा हो गया-

''सर। अब कैसी तबीयत है ?'' वह उसके पास आ बैठा था फिर धीरे से बोला-

''यदि आप डिस्टर्ब हो रहे हैं तो इन्हें बंद करने के लिए कहूं।''

भुवन ने हाथ के इशारे से उसे रोक दिया था। पाश उसके पास पल भर बैठा रहा था फिर उठकर इन लोगों में चला गया । अब तक एक नया सिगरेट तैयार हो चुका था। पाश सिगरेट को रोल करते करते उसके पास आकर खड़ा हो गया-

''लीजिए सर। एक कश लगाकर देखें।'' भुवन सिगरेट नहीं पीता था पर उस समय पता नहीं क्यों एक तलब सी सवार थी शायद अस्वस्थता से ध्यान हटाने का एक मौका था।

उसने पाश के हाथ से सिगरेट ले लिया था और बैठकर अपने होंठों पर लगा लिया। पाश ने ही उसे जलाया था।

भुवन ने एक हल्का कश लेकर तुरन्त धुआं छोड़ दिया था, कहीं खांसी न छिड़ जाए। परन्तु पाश ने उसे लम्बे कश खींचने तथा पल भर के लिए धुंआ रोकने की सलाह दी थी। उसने ऐसा ही किया था। थोड़ी देर के बाद उसे लगा कि उसके अन्तर में मानस पटल पर हर ओर रोशनियां फूट पड़ी हैं- लाल, हरी, नीली, पीली और पता नहीं कितने रंगों की अपने में आत्मसात करती हुई रौशनियां । रौशनियों का अजस्रप्रवाह सारे जिस्म को चेतनशील कर गया था मानों दु:खते जिस्म पर एक सुखद लेप कर गया हो। अनेक दिशाओं की ओर मन द्रुतगति से दौड़ने लगा था-

पांच दिनों का यह साहसिक अभियान अनेक अनुभवों को उसके लिए संजो गया था- पर्वत-पर्वत, नदियां, नाले, वनस्पतियों एव जीव जन्तुओं के अद्‌भुत रूप और सबसे ऊपर भीड़ में चलते-चलते अजनबी व्यक्तियों में उभरती पहचान जो सम्बन्धों को आत्मसात् कर लेती है- वह बिखरने लगा था। श्वेता अगर साथ होती तो कैसा रहता। वह आंखें मूंद लेता है। कई दिनों से वह कह रही थी कि कहीं पहाड़ चलें शायद कुछ लिखने को मिल जाए। वह होती तो मेरा यह दुखता जिस्म शायद इतना न दुखता- नहीं शायद इससे भी ज्यादा दुखने लगता- उसका भी तो बोझ ढोना पड़ता- कब नहीं ढोया। उसकी चिन्तायें उसके सुख-दुख के क्षणों की अधूरी पहचान, उसका मार्गदर्शन, लेखन कहां कब वह अपने वजूद को पकड़ पाई है। सभी कुछ तो उसे ही ढोना पड़ता रहा है- फिर जो पहचान इन अजनबी लगने वाले लड़कों, छात्रों से उभरी है- श्वेता के साथ होने में शायद दब जाती क्योंकि हम दोनों बहुत एकांगी हो जाते- अपने में मस्त- शायद इन लोगों से कटकर रहते- यह कटु अनुभव भी हो सकता था। पर वह मेरे दुखते जिस्म को सहलाती अवश्य- उसे पुराने दिन स्मरण हो आते हैं जब अपने नगर में उसने माथे पर उभरी एक गिल्टी का आपरेशन करवाया था तो वह उसके पास आना चाहती थी- उन क्षणों में भी जब डॉक्टर लोग सबको निकाल बाहर करते हैं। भुवन ने उसे सख्ती से मना कर दिया था। ''यह एक छोटा-सा ऑपरेशन है, मैं आज ही अस्पताल से घर आ जाऊंगा।'' फिर कल घर आ सकती हो। ''वह जैसे मजबूरी जानकर चुप हो आई थी पर अगले दिन सुबह ही आ धमकी थी।'' अकेला पाकर तुरंत पास आकर माथे को बहुत धीरे से सहलाने लगी थी।

''ऑपरेशन करते हुए बहुत दर्द हो रही थी क्या।'' उसने झुककर धीरे से पट्टी बन्धे हुए उसके माथे को चूम लिया था- ''काश। मैं आपके दु:ख को, दर्द को इसी तरह पी सकती।'' भुवन को ऑपरेशन के बाद का तीसरा दिन स्मरण हो आया था जब वह नगर के बाहर चश्मे के किनारे उसकी गोद में सर रखे पड़ा रहा था और वह उसे सहलाती, चूमती मूक-सी बैठी रही थी। भुवन को लगा कि जो रौशनियां सिगरेट के लम्बे कश से फूटने लगीं

थीं अब धुंधली पड़ने लगी थीं– लड़को का शोर जो उसकी सोच के धागों में उलझ गया था अब फिर उभर आया था। सिगरेट अपने अंतिम दौर की यात्रा कर रहा था। उसकी निगाहें पाश को खोजती घेरे को बींध गई थीं। पाश घेरे के बीच आत्मसुद्ध खोए हाथ उठाकर विभोर होकर नाच रहा था। कुछ उसका साथ दे रहे थे तो कुछ दूसरे लोग मात्र ताली पीट रहे थे। वह अधलेटा मूक-सा बैठा उनकी ओर देखता रहा कि पातुल उसके करीब आकर सुस्ताने लगा था। वह हांफ रहा था। शायद नाचते नाचते थक गया हो– भुवन ने सोचा और उसे संकेत से अपने पास बुलाया।

''ज़रा पाश को बुला दो तो।'' वह झट से उठकर पाश को बुला लाया था। पाश ने सिगरेट के दम तोड़ते टुकड़े को फेंक दिया और उसकी ओर उन्मुख हो आया।

''सर। बस हम बन्द कर रहे हैं– सभी अब सुस्ताना चाहेंगे– आप निश्चिन्त होकर सो सकेंगे।'' उसने अपना हाथ उठाकर उसे रोका।

''नहीं पाश। तुम सब खूब नाचो मेरी तबीयत ठीक नहीं अन्यथा मैं भी आपका सहयोग देता....... इसके पहले कि वह अपनी बात पूरी करता वह उछल उठा था–''

''हिप्, हिप् हुर्रे। सर भी नाचेंगे। अरे बहन के.......ज़रा जोर से थाली बजा।' उसने एक मोटी खाली थाली बजाने वाले अपने साथी को दी थी।

''अरे। मेरी बात तो सुनो.........''

''हां...... सर। आप उठिये तो सही।'' उसने उसका हाथ थाम लिया था।

''अरे। आप को तो बुखार है, आप तो बुरी तरह से झुलस रहे हैं।''

पातुल ने अपने बेग से दो गोलियां निकालकर उसे थमा दीं। एक लड़का अपनी बोतल में से मग में पानी भर लाया था। उसने उनके बार-बार ज़ोर देने पर दोनों गोलियां निगल ली थीं।

''सर। आप आराम करें''– पाश कह रहा था।

''वह सिगरेट''। उसने पाश को संकेत किया।

''सर। अब माल ख़त्म हो गया है बस खाली सिगरेट है।''

''कैसा माल ?'' उसने हैरानी से पूछा।

''आप नहीं जानते क्या। इसमें कालाहरि'' भरा था जो द्वाली के चौकीदार से लड़कों ने बहुत सस्ते में लिया था।

''चरस।'' उसकी आंखें फैल गई थीं– तभी तो उसके दिमाग़ में एकदम से उजास हो आया था– अनेक रंगी रौशनियों का सेलाब बहने लगा था। यह बीमारी पहाड़ों में भी फैल रही है– वह सोचता रहा था। उसका मन अब सिगरेट मांगने को नहीं हुआ यद्यपि उसके दो एक कश से मिलने वाली राहत उसे बार-बार सिगरेट पीने की तलब जमा रही थी। वह उठा थोड़ा जिस्म को झटका– गोलियां असर कर रही थीं। बैठे-बैठे पसीना छूट रहा था। जिस्म को थोड़ा सहलाया और चहल कदमी करने लगा। जिस्म का दु:खना थोड़ा कम हो आया था। शायद एक दर्द दूर करने की गोली भी रही हो। पर क्या दवाई दर्द को दूर कर सकती है– मात्र कुछ समय के लिए भुला सकती है– भूलने से दर्द कम होता है क्या ?– पलायन– यह तो पलायन है– अपने आपको ही छलना– पता होते हुए भी हम दर्द से अपना मुख मोड़ कर दूसरी ओर कर रहे हैं वस्तुत: उसे दूसरी ओर मुड़कर भी महसूसते रहते हैं– जो दर्द भीतर का है उसे कौन दवाई दूर करेगी।

''श्वेता! तुम विष जीवी हो। मीठा जहर धीरे-धीरे देती रहती हो जब गरल मनोमस्तिष्क पर पूरी तरह से छा जांता है तो दूर खड़ी होकर लुत्फ उठाती हो फिर हाथ झटक कर दूसरे शिकार की तलाश में निकल पड़ती हो-पता नहीं कितने विषपायी जन्म से थे पता नहीं कितनों को तुमने विषपान करवाया– जब विष का दरिया बहने लगता है तो तुम उसमें प्रसन्नता से डुबकी लगाने लगती हो। जब तक कि वह धुंआ धुंआं नहीं हो जाता। उसका मन कसकने लगा था। उसे श्वेता द्वारा भेजी गई गज़ल की पंक्तियां स्मरण हो आई थीं।''

यह नए मिजाज़ का शहर है
ज़रा फासले से मिला करो

....

मैं जन्म जन्म से उसी का हूं
उसे आज तक यह पता नहीं

वह बहुत दिनों तक इन पंक्तियों को बार-बार पढ़ता हुआ इनमें से उत्स के तलाशता रहा था कि आखिर इन विरोध भासित पंक्तियों द्वारा श्वेता ने क्या कहना चाहा है कि क्या वह अलग होना चाहती है या यह कि उसके पत्रों की कोंच से आहत हो कर उसने अपने अन्तर को चीरकर विश्वास दिलाने की कोशिश की है– पर वह जानता है कि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। वह अब भी वे दिन भुला नहीं पाता जब श्वेता सब कुछ त्याग कर उसके सन्सर्ग के लिए क्षण-क्षण तरसती थी, आतुर हो जाती थी पर अब जैसे गरिमा चूक गई है या नदी करवट ले रही है कौन जाने। उसने सभी स्थितियों का विश्लेषण कर श्वेता को लिखा था कि अगर वह अलग होना चाहती है तो यह उसका अधिकार है पर न ही अपने आप को छलो न ही उसे भटकाओ। एक झटके से अलग हो जाओ। उसने अब निश्चय कर लिया

था कि यह उसका अंतिम पत्र होगा वह पत्र नहीं लिखेगा। लेकिन फिर उसका लम्बा पत्र आया था जो भुवन के अन्तर में व्याप्त क्षोभ को लील गया था-

''भुवन मैं पूर्णत्व चाहती हूं- मुझे अपने में आत्मसात् कर लो- इस तरह मत लिखो कि मैं टूट जाऊं मैंने तो दोस्ती की है। एक और मित्र बनाया है इसमें आपको कोई मलाल नहीं होना चाहिए- आपका स्थान सर्वोपरि है उसे कोई नहीं छीन सकता- मैं आपके लिए मर सकती हूं पर आप तो मुझे इस तरह मानसिक मृत्यु की ओर धकेल रहे हैं। ' उसका मन पत्र पढ़ कर कैसा कैसा हो आया था- पर अगले ही क्षण उसके व्यवहार पर उसे आक्रोश आने लगा था कि वह यह दुतरफा रूप क्यों अपनाती है- फिर उसने ठण्डे मन से एक बड़ा पत्र लिखा था-

श्वेता! तुम्हारा पत्र! तदर्थ धन्यवाद आपने मित्र बनाया है- अच्छा किया- वैसे भी आपको अपने अकेलेपन को बांटने के लिए कोई साथी चाहिये था- आपके मित्र बनाने पर मुझे भला क्या मलाल होना चाहिए- आपके पहले भी मित्र थे- मुझे जब आपकी पहली दोस्ती के टूटने का पता चला था तो मुझे आन्तरिक कष्ट हुआ था-। मैंने बार बार आपको मजबूर किया था कि आप उसे मिलकर गलत फहमियां दूर करें परन्तु इन दिनों तुम्हारा ठण्डा व्यवहार मेरे अन्तर में कुण्ठाओं को जन्म देता रहा है। मिलने पर तटस्थ लिजलिजा तुम्हारा स्वरूप मुझे में धीरे धीरे गरल भरता रहा है- ज़हर का यह अद्‌भुत रूप कितना भयंकर है कि मैं अपने आप से कटा क्षण-क्षण तिल तिल कर अपने ही विश्वास के घुटते हुए विवश-सा खड़ा देख रहा हूं- कुछ कर नहीं सकता- कहीं पर सौन्दर्य की स्पर्धा होती दीखती है जिसमें मुझे लगता है मैं पिछड़ गया हूँ- शायद तुम तुलना करती रही होगी- पर विश्वास करो मैं तुलनीय वस्तु नहीं हूँ- मेरा बजूद तुलना से ऊपर है- तुम कटकर अलग हो जाओ यह मुझे स्वीकार है पर तुम्हारा यह ठण्डा व्यवहार कदापि स्वीकार्य नहीं।

पत्र के उत्तर में दो पंक्तियों का बिना सम्बोधन का श्वेता का पत्र पढ़कर उसे लगा था कि अब कुछ भी बाकी नहीं बचा है मुर्दे को घसीटने के बजाए जला देना बेहतर होगा- श्वेता ने लिखा था।

'' ..... आपके शब्दों ने आहत किया है, और नहीं सहन होता- लिखा नहीं जाता.......।'' 24.01.89 को भुवन ने जो पत्र लिखा था वह सम्भवतया उसके जीवन का निर्णायक पत्र रहा होगा।

''श्वेता- 18.1 का लिखा आपका सम्बोधन हीन पत्र मुझे आज मिला है- इसके लिए धन्यवाद दूं या आभार प्रकट करूं समझ नहीं पाता हूँ- हां इससे मुझे अपनी स्थिति का भान हुआ है- शब्द कोंचते हैं मर्माहत करते हैं और शब्दों में निहित दर्द न जान पाने की स्थिति भी ऐसी ही हो सकती है- यह अहसास मैं भली भांति पाले हूं।''

तुम .... अभी भी मेरे लिए प्रिय हो– अपने प्रियजनों को ऐसी वेदना नहीं देना चाहता। तुमने इस पत्र के माध्यम से अपना विरोध और विद्रोह दोनों ही दर्शाये हैं कि मैं इन शब्दों की कोई परवाह नहीं करती। ईश्वर तुम्हें समर्थ करे बस इतना ही। तुमने मेरे शब्दों के उत्स को नहीं केवल शब्दों के कलेवर को ही पकड़ा है यह मेरा दुर्भाग्य है। चूंकि ये शब्द अब तुम्हें आहत करने लगे हैं अत: विश्वास दिलाता हूं कि भविष्य में तुम मेरे शब्द नहीं पाओगी–

इति.....

इसके तुरंत बाद उसे कुछ दिनों के लिए कार्यालय काम से लखनऊ जाना पड़ा था। पत्रकारों की दुनियां में वह दो चार दिन खोया रहा था पर खाली समय में उसके मानसपटल पर श्वेता की भोली तस्वीर उभर आती थी– पुराने दिनों की ओर उसका मन कसकने लगता था– पर दूसरे ही क्षण उसका वर्तमान रूप उस तस्वीर पर हॉवी होने लगता तो उसके मन में वितृष्णा जाग उठती यही है मेरा विश्वास-इसी के लिए मैं चिंतित होता रहा हूं। महीनों पहले देव ने एक पत्रिका के मालिक से उसका परिचय करवाया था– बड़ा प्यारा-सा नाम था उसका शार्देन्दू-पहले बंगाली समझा था पर वह सिन्धी था। परिचय तुरन्त ही घनिष्टता में बदल गया था– शाम को हम प्याला हुए शार्देन्दू ने एक पासा उछाला था उसकी ओर–

''आप तो स्वच्छन्द रचनाकार हैं पर सरकारी मिडिया में रहकर व्यक्ति विशेषकर सृजन में लगा व्यक्ति कण्डीशन्ड'' हो जाता है– आप छोड़िए सरकारी मिडिया को हमारे साथ जुड़ें– हम एक मासिक पत्रिका आरम्भ करना चाहते हैं पर कोई भरोसे का आदमी नहीं मिल रहा। आप इस आमंत्रण को बिना झिझक स्वीकार करें– आपके सभी अधिकार सुरक्षित रहेंगे।''

''भाई शार्देन्दू– यह ऐसी गम्भीर चर्चा के लिए न ही उपयुक्त समय ही है और न ही उपयुक्त जगह ही। अभी हल्की फुल्की चुटकी छोड़ें खट्टे मीठे अनुभव सुनायें।'' शार्देन्दू घूरता हुआ उसे देखता रहा था।

दूसरे दिन शार्देन्दू ने उससे सीधे वही सवाल दाग दिया था– ''कल समय एवं स्थान उपयुक्त नहीं थे– आज तो दोनों उपयुक्त हैं तुम्हारा फैसला क्या है''– भुवन अनमना हो आया था– शार्देन्दु इस विषय पर इतना गम्भीर होगा उसने सोचा तक नहीं था।

''देखिये शार्देन्दु भाई– मुझे अपने लिए अभी इतनी आवश्यकता नहीं– फिर जब भी चाहेंगे मैं अपना रचनात्मक सहयोग देता रहूंगा। परन्तु मेरी एक मित्र हैं, शिष्या हैं जो हिन्दी में खूब अच्छा लिखती हैं– घर की कुछ परिस्थितियां ऐसी हैं कि उसे घर से बाहर अपने मनोकूल कार्य के लिए भटकना पड़ रहा है।''

शार्देन्दु थोड़े चुप हो आए थे– ''सच सच बताओ कोई ऐसा वैसा मामला है क्या।''

''मैं समझा नहीं- आप क्या कहना चाहते हैं, यदि नहीं कर सकते तो अन्यथा न लें।'' भुवन ने कहा था।

''आप उसके ब्यौरे मुझे दे दें- कुछ न कुछ हो जाएगा। मैं एक आधा सप्ताह के बाद आपको सूचित कर पाऊंगा। पर मैं आपके बारे में ज्यादा इच्छुक हूं। विश्वास करें सब कुछ आप पर छोड़ दूंगा यहां तक कि पत्रिका की नीति भी आप ही निश्चित करेंगे- और आर्थिक तौर पर कोई नुक्सान आपका नहीं होगा।'' भुवन विरोधाभास में फंस कर रह गया था। एक ओर तो स्वच्छन्द जीवन का पारावार दूसरी ओर आर्थिक एवं सामाजिक संरक्षण एवं प्रतिष्ठा। वह अब ''रिस्क'' नहीं लेना चाहता था- पहले के दिन होते तो तुरन्त निश्चित कर लेता- और करता भी रहा है- उसने छः नौकरियां छोड़ी हैं और वर्तमान नौकरी के प्रति भी उसका कोई मोह नहीं है पर उसकी रिसपांसीबिल्टी बढ़ गई है- वह पता नहीं निश्चित कर पाएगा कि नहीं। भुवन अनमना सा लौट आया था लगभग दस ही दिनों बाद शार्देन्दु का पत्र आया था। अंग्रेजी में टाईप किया हुआ:-

''भुवन! आपने अभी तक कुछ न कुछ तय कर लिया होगा- आपने जो ब्यौरे दिए थे उन्हें भी हम रख लेंगे- शुरू में एक हजार के आसपास ही दे पाएंगे- ''इन्टरर्नशिप'' समझ लो फिर साल भर से पहले ही- यदि उनका कार्य ठीक हुआ तो पालेकर कमीशन के आधार पर उन्हें तनख्वाह दी जाएगी जो लगभग शुरू शुरू में 1900/- के करीब होगी- पर उन्हें फील्ड में काम करना होगा। अब आप अपना निश्चय मुझे लिख भेजो हमने तुरंत कोई न कोई निर्णय लेना है- आपकी चर्चा यहां खूब रही। मेरे दूसरे साथी आपसे मिलने को उत्सुक हैं- उधर अमृत धारा के सहयोगी सम्पादक ने जब आपके बारे में सुना तो तुरन्त उछल पड़ा- आप उसे नहीं ला सकते- उसे मैं जानता हूं- अगर आएगा भी तो ज्यादा देर टिकेगा नहीं वह बहुत जिद्दी किस्म का आदमी है पर है सर्वोमुखी एवं जीवट वाला- भाई उन लोगों को ईर्ष्या होने लगी है- अब आप अपना निश्चय कर डालो और तुरन्त यहां चले आओ।''

वह श्वेता के बारे में आश्वस्त हो आया था चलो यहां ''अडजस्ट'' हो जाएगी पर दूसरे ही पल उसके मन में अनेक शंकायें उठने लगी थीं- वह दिल्ली छोड़ना नहीं चाहती- पहले भी उत्तर प्रदेश में जाने के बजाय दिल्ली में घिसटना ज्यादा पसंद करती है- उसने शार्देन्दु के पत्र को हाथ में मसल डाला था- सब व्यर्थ है- मैं क्यों चिंता कर रहा हूं- भुवन भाई। तुम्हें समझ लेना चाहिए-उसकी मान्यतायें बदल गई हैं उसकी अवस्थायें डगमगा रही हैं- अब वह पहले सी श्वेता नहीं जो अजस ऊर्जा का प्रवाह रखते हुए भी चुप थी- शान्त धीर गम्भीर अपनी गहराई में सब कुछ समाए पर अब वह छल छलाती है निश्चय ही तुम्हारी ओर उसका आकर्षण कम हो आया है शायद महानगरीय परिवेश और चकाचौंध ने उसे भी चुंधिया दिया है- वह अब शायद तुम्हारी सहायता नहीं चाहती इसलिए उसके बारे में चिंता करनी छोड़

दो- ज्यादा करीब आने की कोशिश कहीं गलत साबित न हो फिर तुम्हारी जब कोई बात मान्य नहीं तो फिर उसकी इतनी चिंता क्यों-

उसे श्वेता द्वारा पत्र में लिखी हुई गज़ल की पंक्तियां स्मरण हो आती हैं :

> जो गले मिलोगे तपाक से
> कोई हाथ भी न मिलाएगा
> यह नए मिजाज़ का शहर है
> जरा फासले से मिला करो।

उसके अन्तर में कुछ डरक गया था- अथाह ज्वाला कहीं उसे भीतर ही भीतर जलाए जा रही थी- आखिर मेरा कसूर क्या है ? उसने अपनी जेब में पड़े हुए पत्र को निकाला और पढ़ने लगा शार्देन्दु- नहीं न ही मैं आ सकूंगा न वह आएगी- मेरे सर पर उसी का अक्स क्यों सवार रहता है- जहां जाता हूं- उसी के बारे में सोचता हूं- जब मेरे प्रति उसका व्यवहार इस तरह का हो सकता है तो वहां रहते हुए उसने कुछ और ही गुल खिला दिया तो मैं कहां का रह जाऊंगा। उसने पत्र मसल कर जेब में डाल लिया था- सोचों का कारवां उसके जिस्म के दर्द को कम कर गया था। पर मानसिक तौर पर वह बुरी तरह से आहत हो चुका था। दूसरे रोज वह इस साहसिक अभियान के अंतिम पड़ाव से नीचे उतर आंए थे। रात भर वह खूब सोया था- हल्के बुखार के कारण या अति थकावट के कारण वह समझ नहीं पाया। प्रात: अजीब-सा स्वप्न उसके मानसपटल को कचोट गया था- वह श्वेता को अपने साहसिक अभियान के बारे में एक ब्यौरा बता रहा है- उसका स्वर उत्साह से भरा है- किस तरह से उसने हिमाचल को इतने करीब से देखा है वह निरन्तर प्रवाह में सब कहता चला जाता है बिना यह देखे कि श्वेता अनमनी सी उसे सुन रही है- जैसे मात्र सुनना है और उसे बोलना है- जब उसे इसका आभास हुआ तो वह थम गया था- आत्मग्लानि से भर उठा था कि जिसे सुना रहा है उसे इससे कोई सरोकार नहीं वह कहीं और खोई है- उसका स्वप्न खुल जाता है- वह बहुत उदास हो जाता है- सुबह का आलम और यह उदासी।

उसे घर से आए यहां दसेक दिन हो गए हैं वह श्वेता के पत्र, उसके चित्र सभी लौटाना चाहता है। जब संदर्भ बदल जाते हैं तो शब्दों के अपने कोई मायने नहीं रहते हैं फिर ये पत्र, ये चित्र उसे बार-बार कोंचते हैं- वह अब इनसे निजात पाना चाहता है- पर कहां भेजे श्वेता ने अपना ठिकाना बदलने की बात की थी। उसके कार्यालय में फोन करने पर भी उसका कोई पता नहीं चला- पर अभी वह कार्यालय में आती थी। भुवन ने एक दो पत्र उसके पुराने पते पर डाले पर कोई उत्तर नहीं आया। अन्ततः उसने पंजीकृत डाक से उसका सारा मसौदा उसके कार्यालय भेज दिया। पर कुछ दिनों के बाद उसे फिर चिंता सताने लगी कि यदि उसने कार्यालय छोड़ दिया होगा तो पंजीकृत डाक भी कोई ले सकता है। फिर दूसरे ही पल वह

सोचने लगता कि यह व्यक्तिगत मसौदा है एक्नालेजमैंट के साथ भला इसे कोई कैसे ले सकता है। उसी के हाथ लगेगा अन्यथा डाकिया देगा नहीं। इसी ऊहापोह में उसने उसके कार्यालय फोन किया तो पता चला कि वह कई दिनों से नहीं आ रही-। उसकी कोई मित्र थी जिसने भुवन को बताया कि श्वेता का मसौदा उसे मिला है उसने सम्भाल कर रखा है। श्वेता अक्सर विश्वास के साथ इस मित्र की बात किया करती थी अत: वह आश्वस्त हो आया और उसे ताकीद की कि यह श्वेता को ही दे किसी दूसरे हाथ यह नहीं लगे।

इसी बीच उसे लगा कि सदियां बीत गई हैं उसे मिले हुए- एक मन उससे मिलने को भी कह रहा था कि उसे जतलाए कि उसने अपने आपसे क्या अन्याय किया है और उसके साथ क्या किया है पर दूसरे ही क्षण वह सोचने लगता कि यह उसकी सोच है- निम्नस्तरीय सोच को वह इतना तूल क्यों देता है- पर कहीं पर एक कसक बाकी थी- इतना कुछ बाकी होने का अर्थ है कि वह अभी बाकी बचा है।

○ ○ ○

संपर्क : 1/118 विकास नगर, सरवाल, जम्मू।

बाबू जी

❑ शिबन कृष्ण रैणा

हमारे पड़ोस में रहने वाले बाबूजी की उम्र यही कोई अस्सी से लगभग होनी चाहिए। इस उम्र में भी स्वास्थ्य उनका ठीक-ठाक है। जिंदगी के आखिरी पड़ाव तक पहुंचते-पहुंचते व्यक्ति आशाओं-निराशाओं एवं सुख-दुःख के जितने भी आयामों से होकर गुजरता है, उस सब का प्रमाण उनके चेहरे को देखने से मिल जाता है। इक्कीस वर्ष की आयु में बाबूजी फौज में भर्ती हुए थे। अपने अतीत में डूबकर जब वे रसमग्न होकर अपने फौजी जीवन की रोमांचकारी बातों को सुनाने लगते हैं तो उनके साथ-साथ सुनने वाला भी विभोर हो जाता है। विश्व युद्ध की बातें, कश्मीर में कबाइलियों से मुठभेड़, नागालैण्ड, जूनागढ़ आदि जाने कहां-कहां की यादों के सिरों को पकड़कर वे अपने स्मृति कोष से बाहर बहुत दूर तक खींचकर ले आते हैं। ऐसा करने में उन्हें अपूर्व आनन्द मिलता है।

एक दिन सुबह-सवेरे उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया। मैं समझ गया कि आज बाबू अपने फौजी जीवन का कोई नया किस्सा मुझे सुनाएंगे। एक बार तो इच्छा हुई कि मैं जाऊं नहीं, मगर तभी बाबूजी ने हाथ के इशारे से बड़े ही भावपूर्ण तरीके से एक बार फिर मुझे बुलाया। यह सोचकर कि मैं जल्दी लौट आऊंगा, मैं कपड़े बदलकर उनके पास चला गया। कमरे में दाखिल होते ही उन्होंने तपाक से मेरा स्वागत किया। चाय मंगवायी और ठीक मेरे सामने वाली कुर्सी पर बैठ गए। घुटनों तक लम्बी निक्कर पर बनियान पहने वे आज कुछ ज्यादा ही चुस्त-दुरुस्त लग रहे थे। मैंने कमरे के चारों ओर नज़र दौड़ाई। यह कमरा शायद उन्हीं का था। दीवार पर जगह-जगह विभिन्न देवी-देवताओं के चित्र टंगे थे। सामने वाली दीवार के ठीक बीचोंबीच उनकी दिवंगत पत्नी का चित्र टंगा था। कुछ चित्र उनके फौजी-जीवन के भी थे। बाईं ओर की दीवार पर एक राइफल टंगी थी जिसको देखकर लग रहा था कि अब यह राइफल इतिहास की वस्तु बन चुकी है। बाबूजी को अपने सामने एक विशेष प्रकार की मुद्रा में देखकर मुझे लगा कि वे आज कोई खास चीज मुझे दिखाने वाले हैं। तभी सवेरे से ही उनकी आंखें मुझे ढूंढ़ रही थीं। इस बीच मेरा ध्यान सामने टेबिल पर रखे विभिन्न बैजों, तमगों प्रशस्तिपत्रों, मेडलों आदि की ओर गया जिन्हें इस समय बाबूजी एकटक निहार रहे थे। इन मेडलों, प्रशस्तिपत्रों आदि का जिक्र उन्होंने मुझ से बातों-ही-बातों में पहले कई बार किया था, मगर इन्हें दिखाने का मौका कभी नहीं मिला था। आज शायद वे इन सब को मुझे दिखाना चाह रहे थे। गौरवान्वित भाव से वे कभी इन मेडलों को देखते तो कभी मुझे। हर तमगे, हर बैज, हर प्रशस्तिपत्र आदि के पीछे अपना इतिहास था, जिसका वर्णन करते-करते बाबूजी सचमुच गद्गद् हो रहे थे। यह तमगा फलां युद्ध में मिला, यह बैज अमुक पार्टी

में अमुक अंग्रेज अफसर द्वारा वीरता प्रदर्शन के लिये दिया गया आदि। बाबू जी अपनी यादों के बहुमूल्य कोष के एक-एक पृष्ठ को जैसे-जैसे पलटते जाते वैसे-वैसे उनके चेहरे पर असीम प्रसन्नता के भाव तिर आते। मेरे कन्धे पर अपना दायां हाथ रखते हुए वे अचानक बोले पड़े-

''और भी कई बैज व तमगे हैं, मगर बुढ़िया को ज्यादा यही पसन्द थे।''

बुढ़िया का नाम सुनते ही मैं चौंक पड़ा। पूछा-

''कौन बुढ़िया ?''

'अरे, वही मेरी पत्नी, जो पिछले साल भगवान को प्यारी हो गई। - बड़ी नेक औरत थी वह। मुझे हमेशा कहती थी - 'निक्के के बाबू, ये तगमे तुम को नहीं, मुझे मिले हैं-'' बेचारी घंटों तक इन पर पालिश मल-मलकर इन्हें चमकाती थी।

मैंने बाबूजी की ओर नज़रें उठाकर देखा। उनकी आंखें गीलीं हो गईं थीं। शब्दों को समेटते हुए वे आगे बोले-

'बुढ़िया ज्यादातर गांव में ही रही और मैं कभी इस मोर्चे पर तो कभी उस मोर्चे पर, कभी इस शहर में तो कभी उस शहर में -। वाह! क्या डिसिप्लिन था। क्या रोबदाब था। अंग्रेज अफसरों के साथ काम करने का अपना अलग ही मजा होता था।'

कहते-कहते बाबूजी फिर यादों के समुद्र में डूब गए। इस बात का अंदाज़ लगाने में मुझे देर नहीं लगी कि बाबूजी आज कुछ ज्यादा ही भावुक हो गए हैं। पहले जब भी मैं उनसे मिला हूं हमारी बातें पड़ौसी के नाते एक दूसरे का हाल-चाल जानने तक ही सीमित रही हैं। प्रसंगवश वे कभी-कभी अपने फौजी जीवन की बातें भी कह देते जिन्हें मैं अक्सर ध्यान से सुन लिया करता। बाबूजी के बारे में मेरे पास जो जानकारी थी उसके अनुसार बाबूजी पहाड़ के रहने वाले थे। बचपन उनका वहीं पर बीता, फिर फौज में नौकरी की और सेवानिवृत्ति के बाद वर्षों तक अपने गांव में ही रहे। पत्नी के गुज़र जाने के बाद अब वे अपने बड़े बेटे के साथ इस शहर में मेरे पड़ोस में रहते हैं। बड़े बेटे के साथ रहते-रहते उन्हें लगभग पांच-सात साल हो गए हैं। बीच-बीच में महीने दो महीने के लिए वे अपने दूसरे बेटों के पास भी जाते हैं। मगर जब से उनकी पत्नी गुजर गई तब से वे ज्यादातर बड़े बेटे के साथ ही रहने लगे हैं।

इससे पहले कि मैं उनसे यह पूछता कि क्या ये बैज और मैडल दिखाने के लिए उन्होंने मुझे बुलाया है, वे बोल पड़े-

'बुढ़िया को ये बैज और तमगे अपनी जान से भी प्यारे थे। पहले-पहल हर सप्ताह वह इनको पालिश से चमकाती थी। फिर उम्र के ढलने के साथ-साथ दो-तीन महीनों में एक बार और फिर साल में एक बार-। और वह भी हमारी शादी की सालगिरह के दिन।

'सालगिरह के दिन क्यों ?' मैंने धीरे से पूछा।

मेरा प्रश्न सुनकर बाबूजी कुछ सोच में पड़ गए। फिर सामने पड़े मेडलों पर नजर दौड़ाते हुए बोले-

'यह तो मैं नहीं जानता कि सालगिरह के ही दिन क्यों ? मगर, एक बात मैं जरूर जानता हूं कि बुढ़िया पढ़ी-लिखी बिल्कुल भी नहीं थी। पर हां, जिंदगी की किताब उसने खूब पढ़ रखी थी। मेरी अनुपस्थिति में मेरे मां-बाप की सेवा, बच्चों की देखरेख, घर के अन्दर-बाहर के काम आदि उस औरत ने अकेले दम बड़ी लगन से निपटाए। आज पीछे मुड़कर देखता हूं तो सहसा विश्वास नहीं होता कि उस बुढ़िया में इतनी समर्पण-भावना और आत्मशक्ति थी।' कहते-कहते बाबूजी ने पालिश की डिबिया में थोड़ी-सी पालिश निकाली और सामने रखे मेडलों और बैजों पर मलने लगे। वे गद्‌गद् होकर कभी मुझे देखते तो कभी सामने रखे इन मेडलों को। मेडल और बैज धीरे-धीरे चमकने लगे। मुझे लगा कि बाबूजी मुझ से कुछ और कहना चाह रहे हैं किन्तु कह नहीं पा रहे हैं। एक मैडल अपने हाथों में लेकर मैंने कहा-

'लाइए बाबूजी, इस पर मैं पालिश कर देता हूं।'

मेरे इस कथन से वे बहुत खुश हुए। शायद मेरे मुंह से वे भी यही सुनना चाहते थे। कुछ मेडलों की वे पालिश करने लगे और कुछ की मैं। इस बीच थोड़ा रुककर उन्होंने सामने दीवार पर टंगी अपनी पत्नी की तस्वीर की ओर देखा और गहरी-लम्बी सांस लेकर बोले-

'आज हमारी शादी की साल गिरह है। बुढ़िया जीवित होती तो सुबह से ही इन मेडलों को चमकाने में लग गई होती। ये मेडल, उसे अपनी जान से भी प्यारे थे। -जाते-जाते डूबती आवाज में मुझे कह गई थी- निक्के के बाबू, यह मेडल तुम्हें नहीं, मुझे मिले हैं। हां- मुझे मिले हैं। इन्हें संभालकर रखना- हमारी शादी की सालगिरह पर हर साल इनको पालिश से चमकाना।' कहते-कहते बाबूजी कुछ भावुक हो गए। क्षण भर की चुप्पी के बाद उन्होंने फौजी अन्दाज़ में ठहाका लगाया और बोले-

'बुढ़िया की बात को मैंने सीने से लगा लिया। हर साल आज के ही दिन इन मेडलों को बक्से से निकालता हूं, झाड़ता-पोंछता हूं और पालिश से चमकाता हूं। पालिश करते समय मेरे कानों में बुढ़िया की यह आवाज गूंजती है-

'निक्के के बाबू। ये मैडल तुम को नहीं, मुझे मिले हैं- तुम को नहीं, मुझे मिले हैं-।''

संपर्क : *2/537 अरावली विहार, अलवर, राजस्थान 301 001*

o o o

माई

❑ देशबन्धु डोगरा नूतन

देर तो हमें जम्मू में हो गई थी। नान-स्टॉप बस में धक्के-मुक्के झेलने के बाद साम्बा अड्डे पर पहुंचे तो नगरोटा जाने वाली अन्तिम गाड़ी चल पड़ी थी। उसे दौड़ कर पकड़ने में दिक्कत आई, क्योंकि हमने अपना भारी भरकम ओवरकोट पहना हुआ था। बस में इतनी सवारी भरी थी कि हमारा भीतर धंसना मुहाल था। मगर चलो, कण्डक्टर की तकनीक ने हमें खींच-खांच कर भीतर पहुंचा ही दिया था। ज्यादा सवारी तो आठ दस किलोमीटर तक ही होती है और गाड़ी मानसर पहुंचते खाली होने लगती है, किन्तु उसे भी उतारने-चढ़ाने में वक्त लगता है और साढ़े सात या पौने आठ का समय तो कई बार यहां ही हो जाता है। उससे हमारे सिर में दर्द होने लग जाता है और शिवालिक की घाटी में पहुंचते-पहुंचते कम होने लगता है और रुकता कहीं दूसरे दिन सुबह को ही। मैडम जी का कहना है कि ''गैस'' की शिकायत है, मगर हमें तो यह इण्टरनेशनल प्रदूषण की शिकायत लगती है और इसका ईलाज यही है कि हमारी बसें भी 'ऐटॉमिक एनर्जी' से चलें।

रैपर पहुंचे तो सिर दर्द बढ़ चुका था क्योंकि एक तो साढ़े आठ हो चुके थे, दूसरा इस बस में तो शराबी सवरियां कुछ ज्यादा ही होती हैं और उनके भाषण सुन-सुन कर सिर दर्द और भी अधिक हो जाता है। एक साहिब जो राजौरी-पुंछ क्षेत्र के थे और उन्हें बिलावर जाना था, किन्तु गलती से इस बस में बैठ गये थे। उन्हें नगरोटा से आगे जाने के लिये गाड़ी मिलना कठिन था और वे थे भी परेशान। हमने उन्हें रैपर रूकने को कहा तो नहीं माने और हमें भी परेशान कर दिया।

घना अंधेरा था। चम्बा क्षेत्र के पर्वतों की बर्फीली हवाएं सीधा मार शिवालिक पर कर रही थीं। ''आज शायद हमारे 'पंडासता' क्षेत्र में भी बर्फ पड़ जाएगी।'' हमने सोचा था।

मकान के निचले पोर्शन में हमने अभी बिजली नहीं लगाई थी क्योंकि रात को यहां कोई भी नहीं रहता। नायब तहसीलदार का आफिस भी बंद और ससुर साहिब का क्लीनिक भी बंद होता है। ऊपर की मंलिज की बिजली भी बंद ही थी। सड़क से मकान की ड्योढ़ी में पहुंचे तो ऊपर से जगबन्धु ने खिड़की खोल कर कहा, ''पापा जी जल्दी आओ। ड्योढ़ी में सांकल नहीं लगी है। इसकी आवाज़ बड़ी धीमी थी मगर सहमी-सहमी सी लगती थी।

ऊपर पहुंचे तो मालूम हुआ कि नीचे कोई डरावनी शै थी, जिससे बच्चा तो क्या इसकी मां भी डरी हुई थी कि मकान की बिजली ही बंद कर दी थी।

''आपने भी आज ही देर करनी थी ?'' मैडम जी नाराज़ लगती थीं।

''नहीं तो। अरी इतनी देर तो नहीं हुई है। अभी उधमपुर वाली गाड़ी भी नहीं गुजरी है।''

''आप भी दूल्हे की तरह चल पड़ते हो, खाली हाथ। हाथ में कुछ रख लिया करो। आजकल खतरा ही खतरा है।''

हमारा स्वभाव है कि हम मैडम जी से बहस में नहीं उलझते, क्योंकि इन्हें क्रोध आ जाए तो इनके सिर में दर्द होने लगता है और हमें खुद खाना पकाने की झंझट मोल लेनी पड़ जाती है। हमारे मुंह से निकल गया, ''यहां किस का डर है ?''

जगबंधु तुरन्त बोला, ''पाप जी, नीचे चुड़ैल थी। तभी मैंने कहा था कि जल्दी आओ ऊपर को भाग कर।''

''चुड़ैल ?'' हमें हैरानी हुई। बचपन में हमने भी सुना था कि प्रसूता में कोई औरत मर जाए तो वह चुड़ैल बन जाती है जो कि भूत की तरह भयानक होती है। बाल बिखराए होते हैं, पांव उलटे होते हैं, लम्बी छातियां पीछे को लटकाई होती हैं और मनुष्य को मरोड़ कर खा जाती है। हमें याद आया कि हमारे नावल कैदी में चुड़ैल तो बड़ी सुन्दर थी और उस पर सभी को दया आ रही थी। ''बेटे चुड़ैल हमारी ड्योढ़ी में कहां से टपक पड़ी ?''

''सिर इसका। देखो जी, एक पागल-शदैन बिलावर से खून गांव में आई है। कहते हैं कि उसका जवान बेटा किसी ने मार डाला है और यह उसका नाम ले-ले कर रोती है, गोजरी भाषा में।''

''पापा जी। लोगों को पत्थर मारती है। दवानू शाह ने इसका नाम चुड़ैल रखा है। बड़ी डरावनी है- खतरनाक। हमारे घर में आ जाना था। मैने झट ड्योढ़ी बंद कर दी। कहीं दीवार फांद कर न आ जाए, बाग में और फिर ऊपर पहुंच जाए हमें मारने को।''

''बेटे पागलों से छेड़खानी करो तो वे हमला कर देते हैं। हमने तो इसे छेड़ा नहीं कि हमें पीटेगी। इस बेचारी का बेटा मर गया है तो उसके गम में पागल हो गई है।''

''नहीं पापा जी, सारे लोग इस से डरते हैं। परसों इसने बुच्चा शाह को लाठी मारी थी।''

''मुझे तो दिखाई नहीं दी।'' हमने कहा। मैडम जी खुद भी डरी-डरी सी लगीं। बड़े बच्चे नाना जी के साथ ननिहाल चले गये थे और हमने खुद घर पहुंचने में भी देर कर दी थी। हमने बाहिर की बत्ती जलाई ताकि रोशनी सड़क तक चली जाए, मगर गैलरी के नीचे तो अंधेरा छाया रहा। हाथ में टार्च लेकर हम नीचे जाने लगे तो मैडम जी नाराज़ होने लगीं।

''कहीं पत्थर मारेगी तो सिर फोड़ देगी।''

''अरी क्यों मारेगी ?''

''कैसे नहीं मारेगी ?''

''आपने महाराज साईकालोजी इम्तिहान पास करने के लिये पढ़ी थी और हमने पढ़ी है व्यवहार के लिये।'' यह कह कर हम सीढ़ियां उतरने लगे तो जैकू नाराज़गी में फिर भौंकने लगा कि उसे प्यार से पुचकारा क्यों नहीं, किन्तु हमारे पास समय कहां था।

''पापा जी हाथ में लाठी पकड़ लो। यूं तो यह भागेगी नहीं।'' जगबन्धु ने कहा।

''बच्चा अब इतनी रात को यह कहां जाएगी। इतनी ठण्ड है, कुहरा पड़ रहा है।''

''जाएगी क्यों, अपनी लाईब्रेरी में बिठा दो न कुर्सी पर और हीटर लगा दो बेचारी को।'' मैडम जी ने गुस्से में कहा।

अपने स्वभाव के कारण हमने बहस को आगे नहीं बढ़ाया और बेखौफ होकर चल पड़े। हमारे पीछे जगबन्धु भी था। अपने बित्ते से भी लम्बी लाठी हाथ में पकड़ी थी। ''पापा जी, जैकू को खोल दें क्या ?''

''बेटा, उसे काट खाएगा।''

हमने ड्योढ़ी खोली और इधर-उधर टार्च की रोशनी डाली मगर हमें तो कोई दिखाई नहीं दिया।

''नहीं, पापा जी। यहीं कहीं छिपी होगी।'' उसने धीरे से कहा और फिर धीरे से कहा और फिर अचानक एक चीख निकल गई, ''वो है.....।''

''कहां बेटे ?''

''लाठी पकड़ लो। इसने पीटना है।'' वह धीरे से कह रहा था।

''बेटा मुझे तो दिखाई नहीं देती।''

''वहां देखो, ब्रेंकड़ की झाड़ी के पास है।''

उसने बड़ी धीमी आवाज़ में कहा, ''पापा जी यह तो आपसे डर गई है।''

हमने ब्रेंकड़ की झाड़ी पर टार्च से लाईट मारी तो चीथड़ों में लिपटा काला स्याह बुत दीख पड़ा। फिर सरकने-सा लगा। हम जरा पास गये। सच ही वह डरी-डरी सी और अपने दोनों हाथ आगे तान लिये थे, मानो उसके सिर पर लाठी पड़ने वाली हो। सहमी-सहमी नजरों से बिटर-बिटर देख रही थी।

''यहां क्या कर रही हो ?'' हमने रोऽब से पूछा।

उसने कोई जवाब नहीं दिया। उसकी आंखें चमक रही थीं। डरी-डरी सी ताक रही थी।

''भाग यहां से।'' हमें सोच आई कि इस कड़कती ठण्ड में कहां जाएगी।

''कौन है तू ?'' इसी किस्म के चार-पांच सवाल हमने किये, मगर वह संकोच में कुछ नहीं कह सकी, हमें भी उस पर तरस आने लगा और नर्मी से कहा, ''अरी यहां क्यों आ गई मेरे बच्चों को डराने। पार मस्जिद में चली जाती, खून की मस्जिद में।''

ऐसे लगता था कि वह कुछ कहना चाहती थी, मगर जवाब जगबन्धु ने दिया, ''पापा जी, पार खून से इसे हाजी की औरत ने भगाया था कल। बेचारी के पीछे कुत्ते छोड़े थे, मानो कोई जानवर हो।'' बच्चे को भी शायद तरस आ रहा था।

हमने बड़ी हमदर्दी से पूछा, ''तू बोलती क्यों नहीं ? तेरे घर कहां हैं माई ?''

''मुझे माई न कहो। माई न कहो।'' अचानक उसने रुआंसी आवाज़ में कहा और आंखों में आंसू चमकने लगे।

हमें हैरानी थी कि यह ऐसा क्यों कह रही थी। शायद उम्र में छोटी हो। मगर, क्या भला पगली औरत भी ऐसी बात समझती थी। उसकी आवाज बड़ी मीठी थी और भाषा का लहजा राजौरी क्षेत्र का लगता था।

''अरी माई करके क्यों नहीं कहना है ?''

''माई नहीं कहो जी ऽऽऽ।'' 'जी' शब्द में बड़ी ही वेदना भरी लगती थी और आंखें बेबसी प्रकट कर रही थीं।

''आप नहीं कहो जी। आप बड़े हो जीऽऽ।'' उसका एक-एक शब्द मन को चुभता था। उसे कैसे समझाया जाता कि बचपन में जब हमें यज्ञोपवीत पहनाया गया तो पिता जी ने कहा था कि मातृवत् पर दारांश्च, पर द्रव्याणि लोष्टवत् ....। हमने कह दिया, ''अरी मेरे लिये तू मां-माता है। क्या हुआ जो तूने हमें जन्म नहीं दिया। फिर भी किसी की मां तो तुम होगी ही- माई।'' हमने झट उसके गंदे पांवों को छू लिया और वह ठगी-ठगी सी यूं देख रही थी हम ही पागल हों।

''पापा जी, इस बेचारी ने खाना थोड़ा खाया होगा।''

हमने पूछा, ''माई रोटी खाई है ?''

उसने गर्दन हिलाई कि नहीं।

''खाओगी नांऽ ?''

तब भी उसने वैसे ही गर्दन हिलाई।

''उठ यहां से। झाड़ियों में कहीं सांप खा लेगा।''

अपनी गोदड़ी को संभाल कर वह खड़ी हो गई और सड़क की ओर जाने लगी तो हमने कहा, ''अरी उधर कहां जा रही हो। मरोगी कहीं ठण्ड में। चल अंदर ड्योढ़ी में।''

वह ड्योढ़ी की ओर जाने लगी तो हमने कहा कि वह चीथड़ों को बाहिर ही रहने दे, मगर वह झिझक रही थी। न वह ड्योढ़ी के अंदर जाए न वह अपनी गोदड़ी को बाहिर छोड़ सके, मानो इसी में उसकी सारी सम्पत्ति समाई हो। फिर कुछ देर सोचने के बाद वह गैलरी के नीचे पिल्लर के साथ ढांसना लगा कर बैठ गई। इतने में हमारा कुत्ता जैकू भी खुलकर, भौंकता-भौंकता टपक पड़ा। वह कुछ डर गई मगर जगबन्धु ने कुत्ते को थाम लिया। हमने उसे ऊपर को भेजा और मैडम जी को हांक लगाई कि इसके लिये रोटी भेज दे।

पूर्व से हवा का एक झौंका आया कि यूक्लिप्टस के पत्ते झड़ने लगे। ''रात को बारिश या तूफान जरूर आएगा।'' हमने सोचा। बाहिर सड़क पर एक ट्रक शोर मचाता हुआ गुजरा और छत पर जैकू ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा।

उधर मैडम जी खुद ही रोटी ले कर पहुंच गईं। बासी चपातियों की तह लगी थी। घी लगी चपातियां आपस में जुड़ी थीं। एक हाथ में गिलास पकड़ा था जिसमें शायद सब्जी थी। हमें डर लगने लगा कि इस खाने से कहीं हैजा ही न हो जाए और यह भी हमारी कहानी 'बेचारी मनसो' ही न बन जाए।

''नहीं जी, सुबह बच्चों के लिये बनाई थीं। वे तो पहुंचे नहीं और बची रहीं।'' मैडम जी भी अब नर्म पड़ गई लगती थीं मानो इनको भी दया आ गई थी।

''मगर है तो ठण्डी। भूखी है। खाली पेट खराब न लगे।'' हमने नर्मी से कहा।

''सेंक लेती है।''

''ठीक है।''

''ले पकड़। मैं ऊपर से आग ले आती हूं।'' मैडम जी ने उसे चपातियां दीं। सब्जी वाला गिलास ड्योढ़ी में पड़े बेंच पर रखा और ऊपर आग लाने चली गईं। हमें डर लगा कि यह पागल औरत कहीं अपने चीथड़ों को आग ही न लगा दे और मरे। पिछले साल राम नगर में पाल्ला पागल भी जल मरा था। फिर विचार आया कि मैडम जी आग किस में लाएंगी ? हो सकता है तसले में ले आएं।

हमारे सोचते सोचते मैडम जी आ गईं। एक सिगड़ी में कोयले थे। फूंक मारते-मारते आ रही थीं और राख को उड़ा-उड़ा कर अपने सिर पर बैठा रही थीं।

''लो जी, इधर टार्च करो।'' उन्होंने फू-फू करते हुए कहा और अपने सिर से राख झाड़ने लगीं।

''पापा जी मैं ऊपर से टाट ले आता हूं। तख़्त पोश पर बिछा देता हूं।'' क्लीनिक के बाहिर बेंच के साथ ही एक तख़्त पोश पड़ा रहता था, जिस पर गांव के रोगी लेट जाया करते थे। ड्योढ़ी बंद कर लेने पर भीतर ठण्ड नहीं आ सकेगी। हम सोच रहे थे।

''मरो। यह तो रूखी चपातियां यूं ही निगल गई।''

''अच्छा ?'' हमने देखा कि वह रूखी चपातियां चबाए जा रही थी मगर अभी एक बची थी।

''कर फुल्का इधर। मैं इसी में सब्जी डाल दूं।'' मैडम जी ने उसके हाथ में दोना सा बनी चपाती के बीच में गिलास से सब्जी उंडेल दी तो पगली ने चपाती मुंह से लगा ली और तरी पीने लग पड़ी। मैडम जी भी गिलास से सब्जी उंडेलती रहीं। मानो किसी प्यासे को पानी पिला रही हों। फिर पगली ने चपाती की भूकनी सी बना कर इसके बीच में बचे आलू और कचालू के डण्ठल की बड़ियां रखीं, जो कि हमारे पहाड़ों में बड़ी प्यारी सब्जी गिनी जाती है। मगर चपाती बिल्कुल गल गई थी। खाते-खाते बड़ियां बाहिर आने लगीं तो पगली ने दूसरा हाथ नीचे रख लिया और मज़े ले लेकर खा गई।

''कर छम्बा (उवक) तुझे पानी भी पिला दूं।'' मैडम जी ने कहा।

पगली ने अपने गंदे हाथों की उवक मुंह से लगाई तो हमने कहा, ''मैडम जी। हाथ बड़े गंदे हैं। बासी चपातियों से नहीं मरेगी मगर हाथों की मैल अंदर चली गई तो जरूर कुछ हो जाएगा।''

''हां जी, बात तो आपकी ठीक ही है। कोई भाण्डा बर्तन ज़रूर इसके पास होगा। मैंने देखा था एक दिन। खून में दबानू शाह इसे चाय दे रहा था। मुई निकाल अपना भाण्डा।''

वह अपनी गोदड़ी को टटोलने लगी। बड़ी देर के बाद अल्मूनियम का एक गंदा-मंदा कौला सा निकाला।

हमने कहा, ''अरी यह तो तेरे हाथों से भी ज़्यादा गंदा है।''

वह बिटर-बिटर देखने लगी।

''पापा जी, कांच का एक टूटा गिलास पड़ा है।''

''बेटा यह कहीं हाथ या होंठ ही न काट डाले। हां ऊपर एक कप पड़ा है टूटी हत्थी वाला। वह ले आ।'' हमने कहा।

हमारी मैडम जी कुछ ज़्यादा ही दयावान हो गई थीं। झट कहा, ''इसमें क्या है। मैं स्टील का गिलास ही दे देती हूं। यह पानी पी कर धो डालेगी।'' मैडम जी ने उसी गिलास में जग से पानी उंडेला और उसे धोया भी नहीं। पगली शायद समझ गई थी। उसने भी गिलास पकड़ा और एक हाथ से उवक बना कर पानी पीने लगी।

''मुई बीच में पी ले। हां। बीच में पी।'' मैडम जी कह रही थीं। पगली इनकारी में गर्दन हिला रही थी और तीन चार गिलास पानी पी गई मानों बरसों से प्यासी रही हो।

हमने उसे कहा कि अंदर डियोढी में तख्तपोश पर आ जाए, उस पर टाट पड़ा था। हमारे घर में एक पुरानी बक्रवाली कम्बली पड़ी थी और फर्श पर बिछाने वाला कबाड़ी का मोटा कम्बल भी था। मैडम जी उसे लाने चली गईं। जगबन्धु भी उनके साथ था। हमने सिगड़ी में कुछ कोयले और डाले और फूंक मार-मार कर अंगारे निकालने लगे क्योंकि ठण्ड कुछ अधिक ही थी। हमने अभी अपना सूट-बूट तथा ओवरकोट भी उतारा नहीं था। मगर ज्योंही बाहिर को नज़र दौड़ाई तो न वहां पगली थी न उसकी गोदड़ी। मैडम जी भी पहुंच गई थीं।

''आज रात को ठण्ड में अकड़ कर जरूर मरेगी।'' मैडम जी ने कहा।

''कहां चली गई होगी ?''

''पेशाब करने गई होगी।'' मैडम जी ने कहा।

''लेकिन देर बड़ी कर दी है।'' हम सड़क पर आ गये और दोनों ओर टार्च से देखते रहे, मगर उसका कहीं नामो निशान भी नहीं था। ''इतनी जल्दी कहां चली गई।'' हमने सोचा और फिर एक लम्बी हांक लगाई, ''माईऽऽ।''

''आ रही हूं जी। माई माई मत करो जीऽ।''

''हैं। यह कहां थी ?'' हमने सोचा।

जब हम सड़क से ड्योढ़ी में पहुंचे तो वह अपनी गोदड़ी के साथ एक ओर से आ रही थी। उसके चीथड़ों के साथ झाड़ियों से कांटे, छुद्दरी, जोजड़े और झाड़-झंखाड़ चिपका था वह उन्हें निकालती हुई आ रही थी। सोशल फारेस्टरी वालों से हमने अपनी कोठी और सड़क के बीच बची पचहतर फुट खाली जमीन पर पेड़ लगवाए थे। मगर हमारे क्षेत्र से आगे पेड़ तो रहे नहीं, केवल झाड़ झंखाड़ उग आया, जैसे पंज-फूली जड़ी (लैण्टैना कैमरा), कांग्रेस

घास, भांग आदि। पगली शायद पेशाब करने के लिये उधर गई थी और इसे चिपका आई होगी। वह एक हाथ से उन्हें निकाल फैंक रही थी क्योंकि दूसरे हाथ में गोदड़ी पकड़ी थी। बिजली की रोशनी में वह काफी देर तक वह इसमें जुटी रही।

''अपनी गोदड़ी का कितना ख्याल रखती है कि कहीं खो न जाए। न जाने इसमें कितनी लटी-पटी (सम्पदा) संभाल रखी है। हीं. हीं. हीं।'' मैडम जी हंसने लगी।

बात तो सही थी। तख्तपोश पर आने के बाद भी उसने अपनी गोदड़ी को बगल में दबा कर रखा था।

सारी रात जैकू भौंकता रहा और हमें नींद ही नहीं आती थी। पूरब से आंधी और तूफान भी आए और बूंदा-बांदी भी हुई थी। नीचे पगली के रोने की सुर भी कानों में पड़ती रही। हाये शफीका। हाये मेरे पुत्तरा। हाये बच्चेआ। शब्द और सुर से एक वेदना भरा संगीत प्रकट होता था। एक दो बार हम नीचे भी गये तो वह चुपचाप बैठी रही, किसी संन्यासी महात्मा सी, जिसके सुनहरे केश रस्से बन गये थे या जटाएं और धूनी रमाई थी। उसकी आंखें चमकती जा रही थीं। न मालूम कितने युगों से वह सो न सकी थी। राजौरी क्षेत्र की लगती थी, मगर गुज्जर ज़ात की नहीं लगती थी। कौन थी ? इसके बेटे की हत्या किसने की होगी ?

जगबन्धु के नाना जी सुबह-सुबह अपने क्लीनिक में आ जाते थे, क्योंकि उनके गांव से एक ही गाड़ी सुबह-सुबह निकलती थी। जब वे रैपर पहुंचते तो इधर सभी बिस्तर में पड़े होते क्योंकि यहां शिवालिक घाटी में हिमालय से भी अधिक ठण्ड होती है। आज जब हमारी नींद खुली तो वे ड्योढ़ी खटखटा रहे थे। जब हम उठे तो वे कांगड़ी पकड़े ऊपर पहुंच चुके थे।

''ड्योढ़ी किसने खोली पिता जी ?''

''सांकल नहीं लगी थी, यूं ही बंद थी।'' उन्होंने कहा।

हम जैकू के साथ सैर के लिये निकल पड़े। कंपकपी छिड़ी थी। हमने सड़क के किनारे दौड़ना शुरू किया तो पगली नदी की ओर से आती दिखाई दी। ऐसा लगता था कि वह नहा कर आई हो। सारी मैल तो उतरी नहीं थी किन्तु जहां से उतरी थी वहां से गोर रंग सामने प्रकट हो रहा था। वह एक हाथ से वन-गण्ठीरा की कड़वी दातुन कर रही थी और दूसरे हाथ से अपनी गोदड़ी संभाले थी।

हम सैर कर के लौटे तो पूरब से सूर्य भगवान बादलों की चीर-फाड़ करते चम्बा के पर्वतों से निकल रहे थे। पगली बाहिर टैलिफून के खम्बे के साथ ढासना लगा कर बैठी सूर्य को ताक रही थी। गम्भीर सोच में डूबी लगती थी। पिता जी उसे दो रुपये का नोट दे रहे

थे कि किसी दुकान पर जाकर चाय पी ले, मगर वह इन्कार में गर्दन हिला रही थी। तख्तपोश पर, टाट और कम्बल तह लगा कर रखे थे।

''लगता है कि किसी भले घर से है पिता जी।'' हमने कहा।

''बात कुछ ऐसी ही लगती है। जरूर किसी कुलीन घर से है।'' उन्होंने कहा।

चलो हरी पत्ती की चाय उसे मैडम जी से मिल गई और साथ में मीठा बब्बरू भी था। दस बजे तक आसमान बिल्कुल साफ हो चुका था और धूप भी निखर आई थी। बादलों का कोई टुकड़ा भी नहीं था।

मैडम जी ने उसे कहा, ''मुई साबुन ले और सिर तथा तन को साफ कर। क्या भूतनी बनी है। इन कपड़ों को फैंक दे और ये कपड़े पहन ले।''

मैडम जी ने उसे एक पुराना सूट दिया। एक पुराना स्वैटर भी था। घिसा तो कोई खास नहीं था, मगर फैशन के अनुसार नहीं था और मैडम जी उसे पहनती नहीं थीं। चमड़े की एक पुरानी जूती भी थी जिस पर अमृतसरी कढ़ाई की हुई थी। साथ ही कपड़े धोने का साबुन भी था।

उसने कपड़े धोने का साबुन देख कर गर्दन हिलाई, ''यह साबुन नहीं है।''

''अच्छा बाबा तू शैम्पू ही ले ले। शायद तेरे सिर की जटायें खुल जाएं।'' मैडम जी मुस्कराने लगीं। उन्होंने प्लास्टिक की एक बोतल में डिटोल और शैम्पू डाल दिया था। नौकरानी कमरों की सफाई कर चुकी थी और धोने के लिये कपड़े इकट्ठे कर रही थी। उसके साथ ही वह भी नदी पर चली गई।

मैडम जी के स्कूल में दिसम्बर की छुट्टियां चल रही थीं। इसलिये वे हमें प्रैस कापी के लिये नावल डिक्टेट करवा रही थीं। हम बाहिर धूप में चारपाई लगाए बैठे थे और मैडम जी कुर्सी पर बैठी थीं।

पूरब तथा पश्चिम से आने वाली हर गाड़ी रैपर में जरूर रुकती है। हमारी कोठी के सामने। कोई रोगी या दुकान वालों का कोई ग्राहक या नायब तहसीलदार के आफिस में आने वाले लोग जरूर होते हैं। रात को यहां सुनसान होती है किन्तु दिन में खासी रौनक होती है। कभी हमारे कोई मेहमान आ जाता है। छुट्टी वाले दिन तो अक्सर जरूर ही आते हैं। कोई लेखक या कोई यूनिवर्सिटी स्कॉलर। या कोई सिफारिशी चिट्ठी लिखवाने के लिये ही आ जाता है। मैडम जी भी सारा दिन चाय तैयार करती ही रहती हैं या खाना पकाती रहती हैं।

बिलावर की ओर से एक गाड़ी आई तो गुढ़ा कुलवाल के प्रकाश जी आ गये और इनके पीछे एक साहिब और थे काला चश्मा पहने। प्रकाश के पिता जी पहले हमारे मित्र थे

और अब लेखक बनने पर प्रकाश जी हमारे मित्र हो गये हैं। हम सोच रहे थे कि शायद प्रकाश जी अपना कोई नया नावल लिख कर लाए होंगे।

नमस्कार हुई और वे दोनों मेरी चारपाई के पास पड़ी कुर्सियों पर बैठ गये। मैडम जी रसोई में चाय के लिये चल दीं।

प्रकाश जी ने कहा, ''आण्टी जी चाय रहने दें। रोटी ही खा लेंगे।''

''रोटी शायद हम न खिलाएं। हीं हीं हीं। रोटी भी मिल जाएगी। घबराते क्यों हो।'' मैडम जी हंसते-हंसते चल दीं और हम हंसते रहे।

दूसरे साहिब ने कहा, ''बहिन जी मुझे तो जम्मू जाने वाली गाड़ी भी पकड़नी है।''

''महाराज छे बजे तक कई गाड़ियां मिलेंगी।'' मैडम जी ने कहा और चली गईं।

प्रकाश जी ने कहा, ''हां जी कामरेड साहब। ये जनाब हैं राजौरी इलाके के ए.आर. मन्हास। हमारे बापू जी के साथ पटवार ट्रेनिंग की थी। अब कहीं डोडा में तहसीलदार हैं। इस क्षेत्र में भी रह चुके हैं।''

''हां जी। मेरी अपुआईंटमेण्ट इधर ही हुई थी और उन दिनों यह सड़क अभी बन रही थी।'' मन्हास जी ने कहा।

''मैंने इन्हें शायद कहीं देखा हो।'' इतना कहकर हम उन्हें, ताकने लगे, मगर पहचाना नहीं।

''जनाब कल हम इकट्ठे ही गाड़ी में थे।'' मन्हास जी बोले।

''अच्छा ?'' हमें हैरानी हो रही थी।

''हां जी। मुझे नगरोटा से एक ट्रक मिल गया था और रात को बिलावर पहुंच गया था।''

दरअसल कल मन्हास जी ने काला चश्मा नहीं पहना था और राजपूती मूंछें भी थीं।

''हा हा हा। मूंछें तो आपने साफ कर दी हैं।'' हमने कहा।

''हां जनाब। सुबह शेव करने लगा तो एक तरफ की मूंछ जरा निकल गई। क्या ब्लेड था कुछ ज्यादा ही कट गई और बिल्कुल साफ कर देनी पड़ी। चलो घर की खेती है। हीं हीं हीं,।''

''राजपूती मूंछ की शान ही अलग है।'' हमने कहा।

''हीं हीं हीं। राजपूती शान तो जागीरदारी के साथ ही उड़ गई। यही गनीमत है कि जरायत पेशा और खुद काश्त थे कि एक सौ ब्यासी कनाल जमीन बची रही वरना .....।''

''बिलावर में शायद कोई जरूरी काम था ?''

''जनाब हमारी औरत गुम है।''

''औरत ?''

''हां जी मेरे छोटे भाई की बीवी।''

''कब से गुम है ?''

''सात आठ महीने हो चले हैं जनाब।''

''सात आठ महीने ?''

''हां जनाब। वह कुछ बीमार थी। रजौरी हास्पिटल से जम्मू शिफ्ट हुई थी। वहीं से गुम हो गई थी। अखबारों में इश्तिहार निकाले और रेडियो से भी नशर करवाते रहे। जालंधर टी.वी. से भी टैलिकास्ट करवाया था। कोई पता नहीं चला। बहुत खोज की। उसका भाई उन दिनों बिलावर में था। हमने सोचा शायद बिलावर न आ गई हो। सुना गया कि पिछले महीने राम कोट में दिखाई दी थी किसी को। रामकोट में पता किया तो मालूम हुआ कि वह नहीं थी।''

बात यह बनी कि मन्हास साहिब की फूफी की लड़की शाहबानो टीचर थी और इनके छोटे भाई से निकाह हुआ था, जोकि खुद भी स्कूल मास्टर थे। अलीगढ़ से एल.एल.बी. किया और जम्मू में वकालत शुरू कर दी। जम्मू में वकालत भी खूब चली और दूसरी शादी भी अमीर घर में कर ली एक कश्मीरन वकील से। शाहबानो भी राजपूतनी थी। इसलिए झगड़ा हो गया। वकील साहिब ने तीन बार तलाक-तलाक-तलाक कहा और शाहबानो को छोड़ दिया। शाहबानो पहले ही रूठ कर मायके चली गयी थी। दो बेटियों को लेकर मगर बेटा बड़ा था वह दादी के पास ही रहा। बाद में वकील साहिब बेटे को जम्मू ले आए। शाहबानो ने बेटे के लिये झगड़ा किया तो वकील साहिब जज बन कर कश्मीर चले गये तो बेटे को वहीं ले गये।

राजपूतों में आपसी झगड़े तो युगों युगों से रहे हैं, किन्तु मुसलमान बनने पर भी झगड़ों में कमी नहीं आई। अलबत्ता जब 1634 में शाहजहान ने राजौरी क्षेत्र के राजपूतों के झगड़ों को देखा तो हिन्दू-मुसलमानों के आपस में विवाह करने पर पाबंदी लगा दी थी जिसे सारे हिन्दोस्तान में आम लोगों में लागू कर दिया गया।

इधर शाहबानो के भाई ने मन्हास जी की बहिन से निकाह किया था। शाहबानो के बदले में उसने अपनी पत्नी को तलाक़ दे दिया और घर से निकाल दिया। राजपूतों के दोनों धड़े झगड़ने लगे। मुस्लिम पर्सनल लॉ की बदौलत तो तलाक का मामला अदालतों में नहीं पहुंचा किन्तु फौजदारी, मानहानि जैसे मामले तो अदालतों में जा सकते थे। तीन चार साल अदालतों में उलझते रहे। उधर शाहबानो बीमार हो गई। इसी तरह समय बीतता गया और

दोनों धड़े झगड़े में डटे रहे। अचानक एक दिन जज साहिब श्रीनगर से जम्मू आ रहे थे तो उनकी कार का ऐक्सीडैण्ट हो गया। नई पत्नी और बेटा मर गया। खुद जज साहब महीनों चण्डीगढ़ में पड़े रहे। दोनों धड़ों में समझौता हो गया। मनमुटाव दूर हो गया। किन्तु शाहबानो जम्मू हास्पिटल से गुम हो गई। कहां गई ? बहुत से लोग उसकी तलाश में थे। प्रकाश जी के पिता जी ने मन्हास जी को सुझाया कि हम घुमन्तु किस्म के आदमी हैं, शायद घूमते-घूमते हमें शाहबानों कहीं मिल जाए।

मन्हास साहिब ने हमें शाहबानों का अखबार में छपा एक फोटो भी दिया ताकि हम उसे कहीं पहचान सकें। वे बहुत ही परेशान थे। उन्हें जम्मू की गाड़ी पकड़नी थी, इसलिये प्रकाश जी के साथ उन्हें भी खाना परोसा गया और हमारी लाईब्रेरी में दोनों बैठ गये।

हमने ऊपर से नीचे को झांका तो हमारी माई नीचे आ रही थी। नहा-धोकर उजली लगती थी। सुनहरे-सुनहरे केश खुल गये लगते थे और रेशम की तरह चमकते झूल रहे थे। बहुत ही सुन्दर हो गई थी। उम्र भी कम ही लगती थी। किन्तु अपनी गोदड़ी यूं थामी थी कि कोई छीन न ले।

हमने हांक सी लगाई, ''मैडम जी जरा आओ और पहचानो। हमारी माई कितनी खूबसूरत हो गई है नहा धो कर।''

मैडम जी हमारे निकट आ गईं। उनके मुंह से निकल गया, ''ऐ। सच्च, मुई बहुत ही सुन्दर है।''

''माई जी ऊपर आ जाओ सीढ़िया चढ़ कर।''

''मुझे माई मत कहो। न कहो जी।'' और वह खुंदक खाने लगी।

हम दोनों लाईब्रेरी में आ गये तो मन्हास जी ने पूछा, ''बहिन जी कौन है ?''

''है जी एक पागल गुज्जरनी।'' मैडम जी ने कहा।

''गुज्जरनी नहीं। गुज्जरी या गूजरी मैडम जी।''

''आपका भाषा विज्ञान यहां भी टांग अड़ा रहा है क्या। हीं हीं हीं। अच्छा बाबा गुज्जरी ही सही या गुर्जरी।''

''मैडम जी यह तो मुझे गुज्जरी नहीं लगती। यह कोई ब्राह्मण लगती है नयन-नख से।''

''सुन्दर होने का अधिकार क्या सिर्फ ब्राह्मणों को ही है। बाबा यह अक्सर हाय खुदाया करके चीखती है।''

''चलो छोड़ो। आर्यों को तो सुन्दरता का अधिकार तो मिला है। मैडम जी गुज्जर कुछ ज्यादा लम्बे होते हैं।''

हम दोनों की बहस के बीच में ही इन लोगों ने खाना खा लिया था। मैंने खिड़की से झांका तो पगली टैलफून के खम्बे से ढासना लगा कर घास पर लेटी अपने बालों को सुखा रही थी। बालो में एक टूटी-फूटी कंघी घुमा रही थी। लम्बे-लम्बे बालों में अड़कें अब भी ज्यादा थीं और वह खीझ पड़ती।

मन्हास जी को विदा करने के लिये हम नीचे उतरे तो हमने फिर कहा, ''माई ऊपर जा और खाना ले आ।''

''मुझे माई मत कहो जी ऽऽऽ।'

''शाहबानो तू इधर ?'' मन्हास जी उछल पड़े।

''हाये भाइया जी, मेरा बच्चा मारी छड्डेआ।'' वह बेचारी दहाड़ें मार कर रोने लगी। ज़ोर-ज़ोर की चीखें मन को दहला देती थीं।

मन्हास जी ने उसे अपनी बांहों में ले लिया था और वे भी बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो रहे थे।

संपर्क : देश बन्धु डोगरा नूतन, अरुणिमा प्रकाशन, वार्ड नं. 2 इन्दिरा नगर, उधमपुर (जे एंड के)

० ० ०

अस्थियों का सौदा

❑ महाराज कृष्ण संतोषी

बोन्यमाल ने जीवन में कभी रेल नहीं देखी थी। उम्र अस्सी पार हो चुकी थी पर अभी यह संयोग नहीं मिल पाया था। जीवन संघर्ष ने उसे इतनी फुर्सत ही कहां दी थी कि किसी लम्बी यात्रा पर निकल जाए। वैसे भी कश्मीर में रेल कहां थी। जम्मू विस्थापित होकर दी बोन्यमाल को पहली बार रेल देखने का अवसर मिला था। रेल देखकर वह सचमुच अभिभूत हो उठी थी। मासूमियत में उसके मुंह से निकल पड़ा था।

''क्या रेल के इतने सारे डिब्बों के अलग-अलग ड्राइवर होते हैं ?''

''हां होते हैं ना।'' वह देखो उधर वे काले कोट वाले ..... यही होते हैं रेल के डिब्बों के ड्राइवर'' नाती तान्या ने विनोद के स्वर में कहा। सब साथ वाले हंस पड़े थे।

आज पहली बार बोन्यपाल स्टेशन पर रेल देखने आई थी। उसका पोता पुणे में इंजीनियर था और विवाह के बाद सपत्नी पहली बार पुणे वापस जा रहा था। उन्हें ही विदा करने के लिए सब परिवार वाले स्टेशन पर आए थे। बोन्यमाल ने जिद की थी नहीं तो यह अवसर भी नहीं मिलता।

सिगनल डाऊन हुआ। प्लेटफार्म पर काफी हलचल हुई। लोगों के हाथ हिलने लगे। बोन्यमाल ने देखा कि उस का बेटा बद्री और बहु भी हाथ हिला रहे थे। नाती तान्या भी हाथ हिला रही थी। बोन्यमाल ने भी अपना हाथ हिलाना शुरू किया। धीरे-धीरे रेल आंखों से ओझल हो गई। हिलते हुए हाथ रुकने लगे। पर बोन्यमाल अभी भी हाथ हिलाए जा रही थी।

''रहने दो अब नानी। नहीं तो हाथ दर्द करने लग जाएंगे।'' तान्या ने नानी को चिढ़ाने के उद्देश्य से कहा।

''क्या तुम ने अपनी नानी को इतना कमजोर समझ रखा है। कभी अपनी मां से पूछना कि कितना दमखम था मुझे में.....''

''मैं जानती हूं नानी। तभी तो आज भी डाबर च्यनप्राश रोज़ खाती हो।''

''चल तानी कहीं की'' नानी तान्या को तानी कहकर पुकारती थी। (कशमीरी में तानी का अर्थ बडवोली होता है)जब से बोन्यमाल ने रेल देखी, उस में रेल द्वारा यात्रा करने की चाह जगी थी। आए दिन वह अपने बेटे से हरिद्वार जाने की इच्छा प्रकट करने लगी। दरअसल गंगा नहाने का पुण्य और रेल की यात्रा का सुख वह एक साथ अर्जित करना चाहती थी।

एक दिन सचमुच बद्री हरिद्वार की रेल टिकट ले आया। वह मन ही मन मां की खुशी का अनुमान लगा रहा था। घर पहुंचते ही उसने मां को बता दिया।

''सच बद्री।'' मां ने कहा।

''हां मां। इस बार माघ पूर्णिमा का स्नान हम गंगा जी में ही करेंगे।''

''मां भवानी तुम्हें भी अपने बेटों का सुख दे।''

यह सुनकर बद्री की आंखों में आंसू छलक आए। उसके दो बेटे थे। दोनों आंखों से दूर और जीवन संघर्ष में उलझे हुए। ऐसे में उनसे अपेक्षाएं रखना अन्याय ही होता। फिर भी जब वे शिवरात्री पर घर आते। बद्री बेहद प्रसन्न होता। तब वह अपनी पत्नी से कहता कि उन्हें खिलाने-पिलाने में कोई कसर न रखे। यह भी कहता कि बड़े शहरों के सुख नहीं, दुख बड़े होते हैं। हरिद्वार जाने की पूरी तैयारी हो रही थी। बोन्यमाल ने अपने तीन जोड़े फिरन और इस पारम्परिक पोशाक के साथ पहने जाने वाली कुछ अन्य चीजें अटैची में रखवा दीं।

''मेरी एक बात मानोगी, मां।'' बद्री डरते-डरते कह रहा था।

''बोलो बद्री।''

''तुम अब यह फिरन पहनना छोड़ दो। साढ़ी पहनो। बहुत अच्छा लगेगा। मैं तुम्हारे लिए कुछ अच्छी साढ़ियां लाऊंगा। यात्रा में फिरन पहने हुए देखकर लोग तुम्हें अजीब नज़रों से देखेंगे। तब मुझे अच्छा नहीं लगेगा। यह अब हमारे नए मौसम का लिबास नहीं रहा।''

''क्या तुम मज़ारबल से होकर आए हो ? तमाम उम्र जिसे पहना, उसी लिबास को छोड़ दूं.'' मां ने क्रुद्ध स्वर में कहा।

''मां यह क्या कह रही हो ?''

''और नहीं तो क्या ? अपनी मां से कपड़े उतरवा रहा है।''

''नहीं मां। तुम यूं ही बुरा मान गई।''

जो नहीं होना था, वही हुआ। अभी यात्रा में तीन दिन शेष थे। बोन्यमाल और उसकी नाती तान्या घर में अकेले थे। बद्री और उस की भार्या किसी रिश्तेदार को देखने हस्पताल गए हुए थे। वहीं से उन्हें बाजार भी जाना था। दरवाजे पर घंटी बजी। बोन्यमाल ने तानी को पुकारा। वह पहले से ही दरवाजा खोलने अपने कमरे से बाहर निकल आई थी।

''कौन है ?'' बोन्यमाल ने पूछा।

''कादिर अंकल।'' तानी ने जवाब दिया।

''सलाम माहरा'' कादिर जू ने बोन्यमाल के दरवाजे पर खड़े होकर ज़ोर से कहा जैसे वह बहरी हो।

''सलाम'' बोन्यमाल ने कहा। वह झट से उसे पहचान गई थी। वह जूते उतार कर बोन्यमाल के ही पास बैठ गया। इधर-उधर की बातों के बीच बोन्यमाल ने पूछा।

''कैसे आना हुआ कादिर जू ?'' बातों-बातों में बोन्यमाल को यह पता लगा कि उसने उन का पुश्तैनी मकान खरीद लिया है। उसी मकान के पक्के कागज़ बनाने वह जम्मू आया हुआ था। वह भीतर ही भीतर जैसे कांप उठी। आत्मा बेचैन हो गई। गुस्सा उबलने लगा। किसी ने उसे बताया तक नहीं। आज पहली बार उसे लगा जैसे किसी ने उस की आंख के जल और पति की अस्थियों का सौदा एक साथ कर लिया हो। कादिर जू ने बोन्यमाल की भावाभिव्यक्तियां देखीं तो भीतर ही भीतर डर गया। कहीं सस्ते में हथियाया सौदा हाथ से न निकल जाए। अलविदा कहते हुए वह बिना चाय पिए वहां से निकल आया। कहां, दो-तीन दिनों बाद आऊंगा।

कादिर जू के जाते ही बोन्यमाल ने तानी से कहा।

''तानी। अटैची से मेरे कपड़े निकाल लो।''

''क्यों नानी ?'' तानी ने पूछा।

''मैं अब हरिद्वार नहीं जाऊंगी।''

''वह क्यों ? क्या तबियत खराब है।''

''तुम्हारे नाना का घर बेच दिया गया और मुझे किसी ने बताया तक नहीं। शायद उन्हीं पैसों में से मुझे तीर्थयात्रा पर ले जाया जा रहा है।'' बड़े ही खिन्न भाव से कहा उसने।

''यह तुम से किसने कहा ?''

''कादिर जू बता रहा था- चार लाख में खरीद लिया है उसने।''

तानी ने लाख समझाने की कोशिश की पर बोन्यमाल का चढ़ता पारा फिर सामान्य पर नहीं आ सका। रात को बद्रीनाथ ने बहुत चांपे पांव पर मां पर उस का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। बहू ने भी लाख मनाया पर सब बेकार।

आधी रात के बाद तान्या ने अकस्मात देखा कि नानी दर्द से कराह रही है। वह हड़बड़ी में उठी और अपने मामा-मामी को जगाने उनके कमरे तक गई। दरवाजा खटखटाते हुए वह कहे जा रही थी-

''नानी को कुछ हुआ है।''

बद्री और उस की पत्नी जब मां के कमरे में आए तो देखा वह अपने सिर को थामे

कुछ बड़बड़ा रही थी। आंखें तनिक बाहर निकल आई थीं।

"क्या हुआ मां ?" बद्री ने पूछा।

"अब मेरी एक ही इच्छा है .....?"

वह सिर को थामे हुए कुछ अस्पष्ट पर समझ में आने वाले स्वरों में कह रही थी।

"बोल मां।"

इससे पहले कि वह कुछ बोले। वह मुंह के बल गिर गई। बद्री के मुंह से चीख निकल गई।

"मां।"

काफी हिलाने-डुलाने के बाद भी वह होश में नहीं आई। इस स्थूल शरीर को यहीं छोड़कर वह किसी लम्बी तीर्थ यात्रा पर निकल चुकी थी। शायद अपने पुरखों को यह बताने।

"सुना तुम सबने, तुम्हारी अस्थियां बिक गईं।"

शोक के दिन पूरे हुए। घर-गृहस्थी फिर सामान्य हुई पर बद्री अब भी मानसिक रूप से अशांत रहने लगा। कभी-कभी वह अपनी मां के फोटू के पास जाकर उससे कहता-

"बोल मां। तुम्हारी अंतिम इच्छा क्या थी ?" फिर वह बच्चों की तरह बहुत रोने लगता। तब तान्या उसे अपने कमरे में ले जाती। वह उसे अपने मीठे स्वर में मास्टर जिन्दा कौल की लीला कविता सुनाती :-

"स्मरण पननन्य दिचा़ नम
प्रेमुक निशान व्यसिये
रछुरुन तो 'गुम न रोवुम
ओसुम न् बान् व्यसिये।"

[प्रेम में उसने दी
मुझे अपनी स्मरण माला
ओ सखी। पर मैं उसे सम्भाल नहीं पाई
और खो दिया।
मुझ में नहीं थी पात्रता
उसका प्रेम पाने की।]

बद्री को हमेशा इस कविता से सांत्वना मिलती थी।

० ० ०

संपर्क : *113-ए आनंद नगर, बोड़ी (पट्टा) तालाब तिल्लो, जम्मू-तवी 180 002*

रिहाई

❑ अग्निशेखर

आतंकवादी फयाज लोन की रिहाई की खबर से लगभग पूरे गांव में हर्ष की लहर दौड़ गयी। पिछले हफ्ते से जब से रिहाई की घोषणा हुई है, अड़ोस-पड़ोस से लोगबाग, रिश्तेदार फयाज लोन के मां-बाप को बधाइयां दे रहे हैं। गांव का मुजाहिद चेहरा दमक उठा है।

गांव में एक मास्टर ताराचन्द को छोड़कर कोई इस आकस्मिक रिहाई की तह में पहुंचने की कोशिश नहीं कर रहा। फयाज लोन सहित आठ खूंखार आतंकवादियों को ईद के मौके पर छोड़कर क्या मुख्यमंत्री ने कोई संकेत दिया है ? सरकार कहीं घुटने तो नहीं टेक रही ? कहीं राज्य सरकार भी अलगाववाद को बढ़ावा तो नहीं दे रही ? शायद घाटी के हालत बदलने वाले हों... नहीं तो कैसे छोड़ा जाता फयाज लोन! ... सिर पर छह-छह सी.आर.पी. के जवानों और कई निर्दोष कश्मीरी पंडितों का खून है...

फयाज लोन आज शाम तक गांव पहुंचने वाला है। दुनियादारी के तकाजे से मास्टर जी, ताराचन्द को गांव में इसी नाम से जाना जाता है, उसके मां-बाप से अभी मिलकर आया है। गांव के काबिल और हुनरमंद अध्यापक होने के साथ-साथ वह गांव के मुसलमानों के लिए ऐसा पंडित भाई है जो औरों की तरह गांव छोड़कर जम्मू नहीं भागा।

तमाम आग्रहों और उत्तेजनाओं के बावजूद उसने अपने किसी भाई-बहन की न सुनी थी। दोस्तों और हमसायों की बात तो दूर रही। उसकी पत्नी प्रभावती उसे उम्र के इस मोड़ पर गांव में अकेले छोड़कर कैसे जाती। तिस पर उनकी इकलौती बेटी मानसी भी तो अभी अपने गांव में ही थी, जो पड़ोस में था। वास्तव में मास्टर जी की यही एक दुखती रग थी कश्मीर में। मानसी के पति रतनलाल ने भी अपना घर-बार, जमीन-जायदाद, नौकरी छोड़कर गांव से न भागने की जिद्द पकड़ ली थी। हिन्दुओं से खाली हो चुके उस गांव में भी वह मास्टर जी की तरह अकेला घर रह गया था। मास्टर जी ने उसे दलीलें देकर भाग निकलने के लिए तैयार करना कब का छोड़ दिया था।

मास्टर जी की आत्मा मानसी के गांव में अटकी देखकर उसके दोनों बेटे अपने बीवी-बच्चों को उठाकर जम्मू भाग गये थे। मास्टर जी के ऊपर फयाज लोन की पार्टी के एरिया कमांडर रशीद डार का वरदहस्त था, यह बात गांव वाले जानते थे। इसलिए मास्टर जी गांव में बेरोक-टोक घूमते, गनी दर्जी की दुकान पर बैठे-बैठे मजहब से लेकर राजनीति तक की बहसों में हिस्सा लेते। रशीद डार कभी-कभार उनके घर आता-जाता। बहुत कम लोग जानते

थे कि मास्टर जी मन मारकर उसे दिल्ली के हिन्दी अखबारों में छपी जरूरी खबरों या लेखों का अनुवाद कर देते। रशीद डार उन कागजों को आगे भेजता।

मास्टर जी के मन में कहीं एक महीन विश्वास भी था अपने पढ़ाये हुए बेशुमार छात्रों पर। यह विश्वास तो यों हर अध्यापक में होता है। लेकिन घर-बार छोड़कर भाग गये पंडितों में हजारों अध्यापक भी तो थे। उनके छात्र रह चुके रतनलाल ने जब मानसी से उन्हें यह कहला भेजा कि वह उनके मामले में दखल न दें तो उनके भीतर किसी पेड़ की टहनी क्राफ्-से टूटी थी।

''सुना आपने ?''

मास्टर जी संभल गये। सामने प्रभावती हाथ में सब्जी की भरी टोकरी लिये बैठ रही थी।

'नदी पर तस्कीना बता रही थी, अगले जुम्मा को यहां पाकिस्तान बनेगा।'' प्रभावती ने सामने कपड़ा फैलाया, फिर उस पर टोकरी उलट दी। कड़म, बैंगन, टमाटर, मिर्चें फैलकर महक सी उठीं।

''फयाज लोन के बारे में क्या बोल रही थी ?'' मास्टर जी ने पूछा।

''मैंने पूछा नहीं डर से।'' वह हाथ में बैंगन उठाते हुए बोली, ''वैसे उसके खून माफ किये होंगे सरकार ने ?''

''इस पर तो शोर उठेगा।''

''कहां ?''

''जम्मू में... दिल्ली में तो माइग्रेंट कहेंगे कि ये हत्यारे हैं।'' मास्टर जी ने दांतों तले अपना निचला होंठ दबाया।

प्रभावती को यह बात पची नहीं, ''उनको अपने ही झमेलों से फुर्सत नहीं होगी।'' वह कुछ देर के लिए रुकी, फिर उत्तेजित स्वर में बोल पड़ी ''भागे होते हम भी बाल-बच्चों के साथ।''

''तुम्हारा रतनलाल मानता, तब न।'' मास्टर जी ने छूटते ही प्रतिक्रिया दी, ''मानसी को यहां दरिंदों में छोड़कर कैसे भागते ?''

प्रभावती के हाथ में बैंगन को चीरता चाकू ढीला पड़ गया। मास्टर जी की बात उसके जिगर को दो फांक कर गयी, ''रतनलाल को पिछले वर्ष भी अकल ठिकाने नहीं आयी।''

मास्टर जी के अन्दर जैसे बिजली कौंध गयी। वह भीतर तक हिल गये। जैसे किसी ने उनके पैरों के नीचे से जमीन खींच ली और वह अन्धेरे खड्ड में गिर रहे हों....

वह संभल गये थे तीन दिन के त्रासद इन्तजार के बाद। एरिया कमांडर रशीद डार ने उन्हें घर बुलाकर कहा था, ''आपकी बेटी का सुराग मिल गया है। कल सवेरे तक घर चली आयेगी। मुश्किल केस था। हमारी तंजीम के मिलिटेंट नहीं थे।''

गम और खुशी का बांध एक साथ टूट गया था। मास्टर जी बुक्का फाड़कर रो पड़े थे।

''खुदा ताला का शुक्र मानिए मास्टर जी... हम उन्हें सजा दिये बगैर नहीं रहेंगे... यह वादा रहा...'' रशीद डार ने समझाया था।

मास्टर जी को याद आया कि कैसे मानसी के अपहरण की खबर पंख लगाकर जम्मू पहुंच गयी थी। घर-घुमनियों ने नून-मिर्च लगाकर उसे कितना स्वादिष्ट बनाया था... मानसी किसी मिलिटेंट के साथ स्वयं अपनी मर्जी से फरार हुई है... वह मुसलमान होकर कहीं कुपवाड़ा में रहती है... अब वह मिलिटेंटों के लिए भेदिये का काम करने जम्मू आयेगी।

एक दिन प्रभावती के कहने पर मास्टर जी ने रतनलाल को समझाकर मानसी को चन्द दिनों के लिए जम्मू ले जाने का प्रस्ताव रखा। मानसी को लेकर उड़ी तरह-तरह की अफवाहों को झुठलाने का यही कारगर उपाय था।

मास्टर जी मानसी को साथ लेकर सभी सगे-सम्बन्धियों के यहां गये थे। मुट्ठी कैंप में अपने भाई-बहनों को देखकर मानसी बिफर पड़ी थी। उसके देवर और जेठानियों ने भी उसे तत्काल जम्मू चले आने का आग्रह किया।

''अब तो एक ही बात है, गांव में रहूं या जम्मू में।'' रतनलाल ने मास्टर जी का प्रस्ताव सुनकर कहा था। ''भगवान ही बचाये कश्मीरी पंडितों से, वहां पहुंचकर ये लोग मानसी और मेरा जीना हराम कर देंगे। यहां तो फिर भी रशीद डार की हिफाजत का भरोसा है....''

मास्टर जी के मानस-पटल पर एक और स्मृति अंश कौंध गया। वह गनी दर्जी की दुकान पर बैठे थे कि एक अजनबी दुकान के अन्दर आकर तकिये के साथ सटकर चटाई पर बैठ गया। उसने हुक्के की चिलम भरी और गुड़गुड़ पीने लगा। वह गनी दर्जी का कोई दूर का रिश्तेदार था।

''यह हमारे गांव का अकेला पंडित भाई है।'' गनी दर्जी ने मास्टर जी का परिचय कराते हुए उससे कहा, ''यह हमारी अमानत है।''

अजनबी ने मास्टर जी की तरफ एक मुस्कान भर फैंकी।

''आपके यहां तो अभी काफी पंडित हैं, क्यों ?'' गनी दर्जी ने पूछा।

''नहीं गनिया, हमारे यहां कोई पंडित नहीं है।'' अजनबी ने हुक्के की पाइप को मुंह से बाहर निकालकर कहा।

''क्या कहते हो ?'' गनी दर्जी ने आश्चर्य प्रकट किया।

''सच बोलूं ?'' अजनबी ने दायें बायें देखकर कहा, ''बेअदबी माफ, वे भी कोई पंडित हुए जो यहां रहते हैं। पंडित तो वे निकले जो अपनी बहू-बेटियों को उठाकर जम्मू भाग गये। यहां तो अब हम-आप भी नहीं बच रहे हैं, इनकी तो बात ही नहीं।''

मास्टर जी का मुंह सूखी लौकी के मुंह की तरह खुला रह गया।

अजनबी ने हुक्का फिर गुड़गुड़ाया और चिलम में से चिनगारियों के साथ एक लपट निकाली। मास्टर जी को लगा ये चिनगारियां उसकी आत्मा में गिर रही हैं और वह तिलमिला रहा है।

''हमारे गांव में एक पंडित घर है'', अजनबी ने मुंह में पाइप रखे हुए ही कहना शुरू किया, ' दो अलग-अलग मिलिटेंट ग्रुपों ने उसे अपने इलाके में होने का दावा किया है। आये दिन रात में कुछ बन्दूकधारी चले आते हैं। पंडित जी को अपने एक मिलिटेंट के साथ मकान की छत पर ड्यूटी देने को भेजकर खाना खाते हैं और मजे भी करते हैं... अनेक मुसलमानों का भी यही हाल है।''

अंधेरा छा गया मास्टर जी की आंखों के आगे। उनकी शून्य-दृष्टि में मानसी और रतनलाल की आकृति बनी, बिगड़ी और विलीन हुई। कहीं उसकी बेटी भी इसी तरह...

''पंडित जी।''

''अजनबी की आवाज से मास्टर जी चौंक गये।''

''मैं अपनी जवान बेटी रुखसाना को हिफाज़ती दस्तों और मिलिटेटों से बचाने के लिए जम्मू ले गया था। जानते हो मेरी बेटी मेरे एक पंडित दोस्त के घर में ढाई महीने तक रही।'' उसने हुक्का एक तरफ रखा और उठने की तैयारी करने लगा, ''पंडित जी, फिर मैंने उसके हाथ पीले कर दिये।''

मास्टर जी के मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला। उसे लगा जैसे कोई उसे बीच बाजार में नंगा कर गया हो। वह टूटे कदमों से घर लौटकर देर तक चटाई पर औंधा पड़ा रहा।

प्रभावती ने रसोई से बाहर आगर मास्टर जी को सूचना दी कि वह फयाज लोन की मां से मिलकर आयेगी। मास्टर जी की आंखों में मूक स्वीकृति थी। यहां रहना है तो यह सब जरूरी है। मन मारकर ही सही।

प्रभावती आंगन की कच्ची दीवार के उस तरफ राजदानों के अखरोट-वृक्षों के नीचे से होकर कौलों की वीरान पड़ी बगिया की पगडंडी पर चलने लगी। इस बगिया में सेबों और गिलास के पेड़ों के झुरमुट में अरुणधती का अधजला मकान देखकर प्रभावती को हर बार त्रास होता। उसे याद आता है कि उस रात अरुणधती के पति को कैसे ले गये थे आतंकवादी अखरोट-वृक्षों के नीचे। घर में रोती-बिलखती अरुणधती ने अंधेरे में गोलियां चलने की आवाज़ सुनकर दहाड़ें मारे थे। हठात एक चुप्पी पसर गयी थी। सब कुछ ठहर गया था। कोई बाहर नहीं आया था।

मास्टर जी और उसने भी खिड़की तक खोलने की हिम्मत न जुटायी थी। अरुणधती जमीन पर लगभग रेंगते हुए हाथों से अपने पति की लाश टटोलती हुई राजदानों के इन अखरोट-वृक्षों तक पहुंचकर किसी चीज से टकरायी थी। पति के मृत शरीर को उसने देर तक दहाड़े मारकर हिलाया-डुलाया और गोद में उठाया। अन्त में वह घर से बांस की सीढ़ी ले आयी थी।

दहशत से बेखून और अकेली पड़ गयी अरुणधती ने मुश्किल से सीढ़ी पर पति की लाश को रखकर उसे घने अंधेरे में घर तक घसीटा था। दूसरे दिन पुलिस ने उसे ट्रक में बिठाकर लाश के साथ जम्मू रवाना किया था.. फिर एक दिन यह मकान भी धूं-धूं कर जल उठा था।

फयाज लोन के आंगन तक पहुंचते-पहुंचते प्रभावती ने आहत-मन से रास्ते में दर्जनों वीरान और वीरान पड़े पंडित मकानों की तरफ देखा भी नहीं। फयाज के आंगन में चहल-पहल थी। घास की सातेक चटाइयां, प्राइमरी स्कूल का सरकारी टाट और तीन-चार कुर्सियां बंधनवार... शादी ब्याह का-सा दृश्य। मकान की तीसरी मंजिल की एक खिड़की से रशीद डार कुछ लड़कों को हिदायतें दे रहा था। मन ही मन कुढ़ी प्रभावती ने सरकार के माथे जूते पड़ने की बद्दुआ दी।

वह सीधे फयाज लोन की मां के पास जाकर उसे बधाइयां दे कर बैठ गयी। उसके चेहरे की झुर्रियों में ममता का भाव देखकर प्रभावती को अपने नाती-पोते जाद हो आये। पता नहीं कैसे होंगे कैम्प में! फयाज लोन की मां ने सहज ही प्रभावती से मानसी और उसके पति का हालचाल पूछकर जैसे उसे किसी अन्धे कुएं में धकेल दिया।

वह इस कुएं के तल में कब की मर चुकी है अन्दर से। उसकी लाश सड़ी पड़ी है इस जल में। गांव वाले निश्शंक होकर पिये जा रहे हैं पानी। शायद आदी हो चुके हैं। अब किसी रोग के फैलने का उन्हें भय नहीं।

प्रभावती कुछ देर अनमनी-सी बैठकर फिर से आने का बहाना बनाकर चली आयी। मास्टर जी तकिये से पीठ टिकाये सो रहे थे। सहसा पटाके छूटने की आवाज से मास्टर जी

की नींद टूट गयी। वह हड़बड़ाकर ऐसे उठ खड़े हुए जैसे किसी ने उनकी नींद में उतरकर बम धमाके किये हों। खिड़की से बाहर दूर फयाज लोन के घर की तरफ नजरें दौड़ायीं। पटाखे छूटने की फुलझड़ी, उत्साही लड़कों के नारों और एक-दूसरे को खुशामदीद करती आवाजों से उत्सव जैसा माहौल बन रहा था।

''ऐसा लगता है जैसे नदी पर तस्कीना सच ही कह रही थी कि अगले जुम्मा को यहां पाकिस्तान बनने वाला है।'' रसोई की खिड़की से अन्दर मुड़कर प्रभावती मास्टर जी के सामने खड़ी हो गयी, ''फयाज लोन के आंगन में जो माहौल देखकर आयी हूं, वह देखते ही बनता है।''

मास्टर जी ने सहसा एक जोरदार पटाके की आवाज़ से घबराकर खिड़की से बाहर थूक फैंकी।

''क्या मुझे भी जाना चाहिए इस समय ?'' उसने पत्नी की राय जाननी चाही। प्रभावती हामी भरकर रसोई से इलाइची और बादाम की एक मोटी-सी पुड़िया बना लायी, ''यह तुम दे देना, लेकिन सबके सामने, हम शीरीं और कच्ची मूंगफली कहां से लाएंगे। वो तो मुसलमान बांटेंगे।''

मास्टर जी उठ खड़े हुए। सिर पर पीला साफा, आंखों पर गोल ऐनक, हाथ में हैंडिल वाली रंगीन छड़ी और दूसरे हाथ में इलाइची-बादाम का सगुन.. वह चल पड़े। गोया स्कूल के लिए तैयार हुए हों।

फयाज लोन के आंगन में घुसते ही लोगों ने मास्टर जी को हैरत से देखा। कुछ ने रास्ता दिया। फयाज लोन उसे देखते ही उठ खड़ा हुआ। उसे कुर्सी पर बैठ जाने को कहा। इतने में कहीं से आकर रशीद डार ने आंगन में उपस्थित भीड़ को सम्बोधित करना शुरू किया। वह फयाज अहमद लोन सहित आठ मुजाहिदों की रिहाई को तहरीक की एक बड़ी उपलब्धि मान रहे थे।

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच किसी ने पीछे से आकर फयाज लोन के ऊपर शीरीं और मूंगफली से भरी परात उलट दी। एक जांबाज ने उठकर नारे गुंजाये।

मास्टर जी का मन अन्दर से उदास हुआ। उसे ऐसे समय वहां अपनी उपस्थिति बहुत अटपटी लगी। ये नारे उसे तीर की तरह चुभते महसूस हुए। उसे लगा उस मजलिस में एक वही था जो मन से भारतीय था। इसलिए वह अन्दर से तिलमिला रहे थे।

उसने उठकर फयाज लोन के हाथ में इलाइची और बादाम की पुड़िया थमायी। उसे खींचकर गले से लगाया। लोगों ने फिर से तालियां बजायीं। मास्टर जी को लगा कि वह पसीने से तर हो गये हैं और उनका गला सूख गया है।

''मास्टर जी, फयाज साहब आपका शागिर्द है। इसे कामयाबी की दुआ दीजिए।'' रशीद डार की आवाज से मास्टर जी को जैसे नींद खुल गयी। उसे लगा पाजामे के भीतर उसकी अपनी टांगें नहीं हैं। उसने छड़ी के हैंडिल को कसकर पकड़ा। गले में आयी थूक से मुंह को गीला किया, ''डार साहब, फयाज अहमद शुरू से बहादुर बच्चा था। मुझे उम्मीद थी एक दिन वह गुल खिलाएगा। मेरी दुआएँ तो आपके साथ हैं।''

''मैं मास्टर जी का शागिर्द हूं और इनका एहतिराम करता हूं।'' फयाज लोन ने लोगों से मुखातिब होकर कहा, ''मास्टर जी ने हमारे बीच रहकर उस झूठ को बेबुनियाद साबित किया है जो भगौड़े पंडितों ने हिन्दोस्तान जाकर हमारी तहरीक के बारे में फैलाया। कोई भी आकर देख सकता है कि मास्टर ताराचन्द हमारे बीच किस तरह सुख-चैन से रहता है।''

फयाज लोन के मुंह से 'सुखचैन' शब्द मास्टर जी को देर तक 'हांट' करते रहे। खिड़की से राजदानों के अखरोट-वृक्षों के ऊपर उग आये चांद से उन्होंने समय का अनुमान लगाया। कोई डेढ़ बज चुके होंगे। खिड़की से कमरे में चांदनी के कालीन की कतरन बिछी हुई थी। पूरा गांव सो चुका था। सिर्फ प्रभावती और मास्टर जी जाग रहे थे। उनके भीतर का जल खदबदा गया था।

''बेवकूफों को शर्म नहीं आयी खुद को मास्टर ताराचन्द धर का शागिर्द कहते हुए।'' मास्टर जी के स्वर में तल्खी थी।

''तुम ही तो कहते थे सब मेरे पढ़ाये हुए हैं, इसलिये भी क्यों भागने की सोचें ?'' प्रभावती ने प्रत्युत्तर में कहा।

''लेकिन मैंने यह थोड़े ही पढ़ाया है कि हत्याएं करो, बम धमाके करो, पाकिस्तान जाओ, कश्मीरी पंडितों को डरा-धमका कर भगाओ, लड़कियों को उठाकर मुंह काला करो, वगैरह-वगैरह।'' एक ही सांस में कह गये मास्टर जी।

''क्या रशीद डार भी ऐसे ही भाषण देता है जैसे तुम मुझे सुना रहे हो ?'' प्रभावती हंस दी।

मास्टर जी चिढ़ गये। उन्होंने चुप्पी साध ली।

''तुमने रशीद डार को भी पढ़ाया है ?''

''हां, लेकिन मैंने उसे मिलिटेंटों का एरिया कमांडर नहीं बनाया।'' वह फिर चिढ़ गये।

''रशीद डार भी क्या अगले जुम्मा को पाकिस्तान बनने की बात कर रहा था ?'' प्रभावती के प्रश्न के पीछे तस्कीना की बात का प्रभाव था।

''तू पागल हो गयी है ?'' मास्टर जी चिढ़कर लगभग चीख पड़े, ''रशीद डार का सर बनेगा यहां पाकिस्तान। क्या घाटी में बन्दूकिए सिरफिरे ही सब कुछ हैं। मेरे सामने रशीद डार का नाम मत लिया करो।''

वह बोलते-बोलते अचानक रुक गये। आंगन में हुई किसी आवाज़ से उनका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। सांस टूटने को हुई। क्या आंगन में कोई टहल रहा है ? प्रभावती का मुंह सूख गया। मास्टर जी ने साहस जुटाकर खिड़की से नीचे आंगन में नज़र दौड़ायी। कोई नहीं था।

''इतनी रात गये कौन होगा।... जरूर कोई कुत्ता होगा।'' प्रभावती ने खिड़की से चांद को अखरोट-वृक्षों के बायीं तरफ सरका हुआ देखा।

मास्टर जी ने फिर बातों के टूटे तार को जोड़ने की कोशिश की, ''प्राइमरी स्कूल के अहाते में तुम्हें याद है कैसे फयाज लोन ने घात लगाकर कुएं पर नहा रहे छह सी.आर.पी. के जवानों को गोलियों से भून डाला था... उनमें से एक तो कुएं में ही गिर गया था.. फिर राधेनाथ भट्ट, अशोक कुमार, बिहारी लाल जैसे कितने कश्मीरी पंडितों की हत्या में उसका हाथ बताया जाता है। और यह रशीद डार... मास्टर जी इसे कामयाबी की दुआ दीजिए। हुँह।''

प्रभावती उसे अवाक् देखती रही, फिर जैसे उसे अनायास ही कुछ याद आया, ''मेरी बेटी को अपनी जान पर खेलकर बेचारा बचा लाया। मेरी सात पीढ़ियों पर उसका एहसान है। मैं तो यही कहूंगी।''

''मैंने तुमसे अभी कहा न, रशीद डार का नाम मेरे सामने मत लो। मेरी रगों में चींटियां दौड़ने लगी हैं।'' मास्टर जी का चेहरा तमतमाया। उसकी कनपटियां लाल हो गयीं। मानसी का प्रसंग याद आते ही उसे भूकम्प के झटके महसूस हुए। धरती, मकान, राजदानों के अखरोट-वृक्ष सब कुछ हिलता महसूस हुआ।

''जानती हो, तुम्हारी मानसी को पिछले साल किसने अगवा करवाया था ? किसके मनहूस साये में वह तीन दिन और तीन रात एक दूरदराज जगह में रही ? यही कर्मजला रशीद डार था... एरिया कमांडर।''

सन्न रह गयी प्रभावती। उसके हाथ की उंगली दांतों तले चली गयी। सर चकराया। ''क्या कह रहे हो ? तुम्हें किसने बताया ?''

''अकरम डार ने। वह उसकी तनजीम छोड़कर दूसरे दल में चला गया है। जानती हो इस अधमोये ने मानसी को धमकी दे रखी है कि जिस दिन वह यह भेद खोलेगी, वह विधवा और अनाथ कर दी जायेगी। और यदि मानसी ने गांव छोड़कर भागने की भी सोची तो वे जम्मू जाकर भी उन्हें नहीं छोड़ेंगे।'' मास्टर जी कहते-कहते रुक गये।

आंगन में एक बार कोई आवाज़-सी हुई। मास्टर जी ने ध्यान से सुना, किसी आदमी की आहट थी।

''ओ ताराचन्द के बच्चे।'' रशीद डार की आवाज थी। दोनों के होश उड़ गये।

''मक्कार! भेदिए! रशीद डार की आवाज़ में तिलमिलाहट थी। तभी धस्सक्-से एक पत्थर खिड़की से अन्दर आकर दीवार से बज गिरा। दोनों बाल-बाल बच गये। मास्टर जी ने प्रभावती का हाथ पकड़कर अपने को कमरे के एक कोने में छिपा लिया। सीने में हंफनी चल रही थी। प्रभावती छाती पीटने लग गयी।

''सुबह होने दो साले!... आस्तीन के सांप! .. देख लूंगा तुम्हें भी और अकरम डार को भी। और तुम्हारी बेटी की जांघें न खोल दूं तो मेरा नाम नहीं... आता हूं।''

मास्टर जी और प्रभावती आंगन के पार राजदानों के अखरोट-वृक्षों की तरफ जाती रशीद डार की पदचाप को तब तक सुनते रहे जब तक उनके कानों में सोये हुए गांव की बारूद सी खामोशी नहीं भर गयी।

. चांद पेड़ों की फुनगियों के पीछे जैसे कहीं गिर गया था। दूसरी सुबह नीम अंधेरे में ही मास्टर ताराचन्द धर के दरवाजे पर लटकता हुआ मोटा ताला देखकर सभी हैरान थे ...।

o o o

संपर्क : बी-90/12, भवानी नगर, जानीपुर, जम्मू-180 007

मां–बहिनें

❑ चांद दीपिका

सुनसान सड़क पर बस फुल स्पीड भागी जा रही थी। और उससे भी कहीं तीव्र विचार प्रीती के भीतर भागे जा रहे थे।

''आप चिन्ता न करें। यदि यह बस सिम्बल के आगे न भी गई तो आप हमारे घर रह लीजिएगा।''

घनी अन्धियारी रात। लास्ट बस। प्रीती भयभीत दृष्टि से कभी पद्मा बहिन जी तथा कभी कंडक्टर की और निहारे जा रही थी।

''बहिन जी, यदि-यह बस जम्मू न गई तो....'' कम्पित स्वर में प्रीती ने बहिन जी से प्रश्न किया।

''बस वाले ने सवारियां जब जम्मू की बिठा रखी हैं तो जायेगा क्यों नहीं,'' पद्मा बहिन जी ने प्रीती का हाथ अपने हाथ में ले दिलासा दिया।

''मैंने कहा शीघ्र बस से उतर जाओ।''

कंडक्टर ने एक सवारी को कन्धे से पकड़ सीट से उठाते हुए बस की खुली खिड़की में धकेल कर चिल्लाया।

''यह सर्दी की ठिठुराती रात आधे रास्ते में उतर कर मैं कहीं का न रहूंगा।'' सवारी ने मुर्दा स्वर में उत्तर दिया।

''उतर जाओ,'' कंडक्टर गुर्राया।

''ड्राईवर साहिब गाड़ी रोक दीजिये।''

कंडक्टर की तेज़ आवाज़ से गाड़ी रुकी और इससे पूर्व सवारियां कुछ करें उसने सवारी को बस से उतार दिया।

''अब क्या होगा ?''

प्रीती ने बहिन जी को झिंझोड़ रुआंसे स्वर में पूछा।

पद्मा बहिन जी कहने को ही उपराम बैठी थी। उनके भीतर भी बवंडर चल रहा था।

पर वो प्रीती का साहस तोड़ना नहीं चाहती थी। उन्होंने प्रीती का हाथ धीरे से दबा स्नेहिल स्वर में कहा- तू तो यूहीं परेशान हो रही है। वो सवारी तो किराये में पैसे-पैसे के लिए झगड़ रही थी। कंडक्टर उसे बस से न उतारता तो क्या करता।

पद्मा बहिन जी की दृष्टि से दृष्टि मिलते ही प्रीती के मन को राहत मिली। उसने दृष्टि उठाकर देखा कंडक्टर ड्राईवर के समीप इंजन पर बैठ गपशप लगाने में व्यस्त था।

कुछ पल में सन्नाटा छाया रहा। एक स्थान पर बस रुकी कुछ सवारियां अपने स्टाप पर उतर गईं।

गाड़ी चलते ही कंडक्टर बहिन जी को बकाया देने चला आया।

''बेटा हमने जम्मू जाना है। यदि यह बस जम्मू नहीं भी जानी है तो ड्राईवर से कह कर हमें सतवारी ही उतार देना। हम औरतें रात भर कहां भटकती फिरती रहेंगी।''

बहिन जी ने कंडक्टर से याचना की।

''मां जी आप चिन्ता क्यों कर रही हैं।'' हमारा घर सिम्बल मोड़ से कुछ पहले खेतों में पड़ता है। बस रात की ही तो बात है। आप हमारे घर रह जाना। फिर सुबह होते ही यह बस आपको जम्मू छोड़ आयेगी।''

कंडक्टर की हठधर्मी पर प्रीती की आंखों में क्रोध की लाली दौड़ गई। और कोई समय होता तो वो उसके चेहरे पर चांटा रसीद कर पूछ लेती- आर.एस.पुरा में तो बड़ी लम्बी आवाजें मार सवारियों को जम्मू ले जाने के लिए बुला रहा था। अब कम्बख्त ब्लैकमेलिंग कर रहा है। और कोई कुछ कहे न कहे। तुम्हारे लिये मैं अकेली ही पर्याप्त हूं।

सुनसान सड़क। अकेली भागती बस। दुश्चिन्ताओं से घिरा मन। प्रीती ने अपने भीतर की कड़वाहट को चाशनी में उंडेल कर कहा- रात सवेर बिच अन्तर है क्या। यह सवारियां अगर समय रहते अपने ठिकाने पहुंच गईं तो आपको दुआ ही देंगी।

कंडक्टर बिना कुछ कहे अगली सीट पर जाकर पैसे गिनने लगा। पद्मा बहिन जी के संकेत पर प्रीती भी अपनी सीट छोड़ उसके पास जा बैठी। और आशा भरी दृष्टि से उसे निहारने लगी।

''आपको मुझ पर विश्वास नहीं है।'' कंडक्टर ने प्रीती की ओर घूर कर देखा और फिर पैसे जेब के हवाले कर ड्राईवर के पास इन्जन पर बैठ गया।

कैसी कुघड़ी दोनों ने मन्दिर छोड़ा था। बड़े ही पहुंच वाले सन्त थे वो। चेहरे पर अपूर्व शान्ति। आंखें जैसे दो जलते दिए। समीप बैठते ही लगता था जैसे गंगा के शीतल शान्त किनारे

पर जा बैठे हों। अनेकों बार प्रीती पद्मा बहिन जी के साथ सन्त जी के दर्शन हेतु आई थी। इस बार आना चिरकाल पश्चात् ही हो पाया था। सन्त जी के एक शिष्य ने बताया था कि वो अस्वस्थ चल रहे हैं। सन्त जी के उपदेश अमृतवर्षा कर रहे थे। प्रीती और पद्मा बहिन जी सुधबुध भूल आकण्ठ अमृतपान किये जा रही थीं। बाल क्लाक ने ही चेताया था उन दोनों को। सन्त जी से विदा ले वे जैसे भाग पड़ी थीं।

लास्ट बस से पहली बस पकड़ने का प्रोग्राम था। पर बस अड्डे से लास्ट बस सिटी बस भी सवारी फुल हो जाने के कारण पन्द्रह मिंट पूर्व ही जा चुकी थी। और यह बस तो न जाने कहां से आकर अड्डे पर खड़ी थी। बीस पच्चीस सवारियों को देख कंडक्टर ने आवाज दे बस में बिठा लिया था।

सवारियों की संख्या ज्यों-ज्यों घटती जा रही थी। प्रीती का हृदय तीव्रता से धड़कने लगा था। उसकी आंखों से आंसू बरबस छलक पड़े थे।

''मैडम जी, आप कभी चकरोई गये हैं ?''

आंसुओं से धुंधलाई दृष्टि से उसने देखा कंडक्टर उसके पास सीट पर आ बैठा था।

''क्यों ? उसने शंकित हो पूछा।

''क्षमा करना मैडम जी मैंने आपको यहां आर.एस.पुरा में अनेकों बार आते जाते देखा है। आपकी बातचीत, चाल-ढाल से लगता है कि आप सर्विस भी करती हैं। हो सकता है कि आप चकरोई स्कूल में पढ़ाने के सिलसिले में कभी ट्रांसफर भी होकर गई होंगी।''

कंडक्टर के बडबोलेपन पर प्रीती क्रोध में बल कर रह गई।

कंडक्टर ने प्रीती के उत्तर की प्रतिक्षा न करते हुए कोमल स्वर में पुनः कहा-

''और वहां के सरपंच जी की लड़की हरजीत को तो आप अवश्य ही जानती होंगी।''

प्रीती ने अविश्वास भरी दृष्टि से उसकी ओर ताका।

''बड़ी ही प्यारी लड़की है हरजीत। मैंने निश्चय किया है विवाह जब भी करूंगा उसी से करूंगा।''

कहां हरजीत और कहां यह लंगूर! प्रीती ने मन ही मन व्यंग्य किया। हरजीत प्रीती की सबसे प्रिया छात्र थी। चकरोई स्कूल की सबसे सुयोग्य, हरदिल अजीज हैडगर्ल हरजीत। साये की भांति घूमा करती थी प्रीती के साथ। एक-एक रग का पता था प्रीती को उसका।

''मैं कंडक्टर नहीं हूं मैडम जी। एम.ए. की परीक्षा देने के पश्चात् मामा की बस का शौकिया कंडक्टर बन गया। सोचा खाली समय यह भी अनुभव कर लिया जाये।''

''राजसिंहा गप्पां ही मारदा रवेंगा या फेर सवारी कोला पैसे वी फड़ेंगा।''

ड्राईवर की तेज आवाज़ से कंडक्टर की वाणी को जैसे ब्रेक लग गई। वो दरवाजे के पास खड़ी सवारी से किराया लेने चला गया।

सवारी के उतरते ही प्रीती का कलेजा मुंह को आने लगा था। सर्दी की जमा देने वाली ठण्ड में वो पसीना-पसीना हो चली थी। एक रील चलचित्र की चलने लगी थी उसके ख्यालों में।

बस यदि सिम्बल तक गई तो बहिन जी और उसे ड्राईवर कंडक्टर के घर अवश्य ही रहना पड़ेगा। और उधर जम्मू रात गये फोन की घंटी बजेगी- मम्मी जी आपके घर है।

यह फोन पद्मा बहिन जी के लड़के सुधीर का होगा।

''नहीं तो,''

प्रीती के भाई साहिब वीरेन्द्र जी का उत्तर होगा।

फिर कुछ एक घंटों पश्चात् फोन की घंटी पुनः बजेगी।

''प्रीती आंटी घर हैं ?'' सुधीर का प्रश्न होगा।

फिर पद्मा बहिन जी और उसका (प्रीती का) सरेआम जलूस निकल जाएगा। आफिस-परिचितों के घरों फोन करके पता पूछा जायेगा। हास्पिटल, बस स्टैंड, शमशान घाट सब छान मारे जायेंगे।

''अनकहे तो कभी जाती नहीं थी। फिर गई तो कहां गई।'' चिन्तित घर वाले सोच में डूब दोहरा रहे होंगे।

''हे बाह्वे वाली माता रक्षा करना।''

प्रीती के दृष्टि पथ से बसों में हुए हादसे एक-एक करके गुजर गये। खाली बस में अकेली युवा सवारी के साथ ड्राईवर कंडक्टर ने कैसा व्यवहार किया था। सुनसान स्थान पर इज्जत लूटनी चाही थी दोनों ने। पर सवारी सावधान निकली थी। चलती बस से कूद गई थी। यह और बात थी कि काफी चोटें आई थीं।

यदि इनी गिनी शेष सवारियां भी उतर गईं तो... वो दोनों रात के अन्धेरे में ड्राईवर-कडंक्टर से मुकाबला कैसे कर पायेंगी। ड्राईवर का तो पता नहीं कंडक्टर निर्दयी, बेईमान है। आंखें तो इसकी ऐसी हैं जैसे अंगारे जल रहे हों।

"हे भगवान, हे वाहेगुरु हमारी रक्षा करना।"

अन्तर की उमड़ती बैचेनी से घबरा कर प्रीती सीट से उठकर पद्मा बहिन जी के साथ बैठने ही वाली थी कि कंडक्टर उसके पास आकर बैठ गया।

"एम. ए. का रिजल्ट निकल जाये तो नौकरी के लिए आवेदन करूंगा।"

कंडक्टर की आवाज टेपरिकार्डर की भांति पुनः चालू हो चुकी थी। और कोई समय होता तो प्रीती कंडक्टर की प्रेमकथा को चटखारे लेकर सुनती। खोद-खोद कर प्रश्न पूछती। परन्तु उसकी मानसिक सूई एक ही प्रश्न पर अटक कर रह गई थी... यदि यह बस जम्मू न गई तो.......

"सिटी बस ...."

सहसा बस में किसी की हर्षध्वनि गूंजी।

"किधर........."

सिल पत्थर बनी सवारियों में हरकत हुई।

"अरे वो देखो हमारी बस के आगे जा रही है।"

कोई जोर से चीखा।

"ड्राईवर जी सिटी बस को हार्न दे रुकवाईये।"

कहीं से आवाज आई।

सवारियों के शोर शराबे से प्रीती की तन्द्रा टूटी। उसने चश्मा लगा खिड़की के बाहिर मुंह निकाल सिटी बस को देखने का प्रयास किया। पर बाहिर अजगर की भांति पसरे अन्धेरे के अतिरिक्त कुछ दृष्टिगोचर न हुआ।

आशा का लैम्प जला था। उसके बुझते ही प्रीती सघन अन्धकार में डूब गई। कंडक्टर की बातें अस्पष्ट सी उसके कानों से टकरा रही थीं।

"उतरो"

बस के झटके तथा सवारियों की आवाजों से प्रीती की चेतना लौटी। उसने देखा पद्मा बहिन जी उसके समीप खड़ी उठने के लिए कह रही थी।

''शीघ्र उतरो सिटी बस रुकेगी नहीं।'' कंडक्टर का अगला आदेश हुआ।

भरी पूरी सिटी बस। तिल धरने को स्थान नहीं। कंडक्टर ने प्रीती और पद्मा बहिन को आटे की बोरी की भांति घसीट कर सिटी बस में धकेला रोबीले स्वर में बोला- ऐ कंडक्टर यह दोनों मेरी मां-बहिनें हैं। इन्हें सकुशल जम्मू बस स्टैंड उतार देना। और यह ले पैसे इन दोनों का किराया।''

० ० ०

संपर्क : *गृह क्रमांक 323, रिहाड़ी कालोनी, जम्मू तवी -180 005*

अन्तिम अभिवादन

❑ यशा माथुर

ढोलक की थाप और घुंघरूओं की छम छम के बीच पूरा वातावरण संगीतमय था। घर में बधाई तथा शुभकामनाओं की स्वरलहरी के बीच आपसी छेड़छाड़ तथा हर्षोल्लास का माहौल था। हर कोई व्यस्त था। कहीं पिता जी बारात के स्वागत तथा उसकी खातिर के लिए निर्देश दे रहे थे तो कहीं नीरज अपने दोस्तों के साथ भागदौड़ कर रहा था। बस शान्त थी तो मधु जो चाहती तो थी कि वो खुश होकर अपनी छोटी बहन निशा की ज़िन्दगी में आने वाली खुशियों की खुशी मनाए लेकिन अब खुश होना उसके बस में नहीं था। एकान्त और सूनापन ही उसकी ज़िन्दगी का सबब बन चुका था।

एक ओर चल रहे 'लेडीज़' संगीत में उसकी भाभी चहक-चहक कर चुहलबाजियां करने तथा अपनी छोटी ननद को बधाईयां देने में मशगूल थी। बाकी पास पड़ौस तथा रिश्तेदारी की औरतें भी खुशी भरे गीत गाने में अपना हर संभव योगदान दे रही थीं परन्तु इस तेज संगीत और शोर के बीच मधु का मन कहीं भटक रहा था। उसे याद आ रहे थे वो दिन जब उसकी शादी का जश्न भी इसी तरह से यौवन पर था। रिश्ते की भाभियां उसके साथ मज़ाक कर रही थीं और उसे 'मधुर' का नाम ले लेकर छेड़ रही थीं। उसका तथा उसके होने वाले पति का नाम एक सा होने के कारण भी उनको मज़ाक का एक और बहाना मिल गया था। जब उसे कोई 'मधुर की मधु' कह कर चिढ़ाता था तो वो शरमा जाती थी और उस मधुर की याद में खो जाती थी जो वास्तव में मधुर था और जिसने उसकी ज़िन्दगी में इतनी मधुरता घोली कि आज भी उसे उसकी मिठास का अहसास होता ही रहता है।

शादी के रीति रिवाज़ों, मेहमानों की आवाजाही तथा मां और पिता जी के चिन्ता भरे चेहरों के बीच वो दिन भी आ गया जब मधुर बारात लेकर उसके दरवाजे पर खड़ा था। हर कोई यही कह रहा था कि हमारी मधु के लिए ऐसे ही लड़के की जरूरत थी। और मधु, उसे तो लग रहा था कि जैसे उसकी जन्मों की तपस्या सफल हो रही है। खेल में हमेशा आगे रहने वाली, स्कूल में वाद-विवाद प्रतियोगिता की शील्ड हमेशा अपनी झोली में डालने वाली, एन.सी.सी. की कतार में सबसे आगे खड़ी रहने वाली मधु चाहती थी कि उसका पति वो गबरू जवान हो जिसे देख कर वो पूरी ज़िन्दगी इतराती रहे। उसे उसकी मां ने अनेकों रिश्ते बताए लेकिन उसको कोई नहीं भाया और जब कैप्टन मधुर से उसके रिश्ते की बात निकली तो उसने झट से हां कह दी। हां, एक फौजी से शादी करने की उसकी चाहत आज पूरी होने वाली थी।

बारात दरवाजे पर सजी थी और घोड़ी पर सजा था सुकुमार मधुर। द्वार शिष्टाचार के बाद मधुर को अन्दर लाया गया और स्टेज पर सजी दो कुर्सियों में एक पर बिठा दिया गया। इतनी ही देर में पण्डित जी ने जयमाला सम्पन्न कराने का निर्देश दिया और लड़की को लाने की हुंकार भरी। फिर क्या था दुल्हन के वेश में सजी संवरी मधु को एक ओर से उसकी बहन निशा ने तथा दूसरी ओर से उसकी प्यारी सहेली शीला ने हौले से पकड़ा और आगे बढ़ने के लिए कहा। आहिस्ता-आहिस्ता पग धरती मधु आखिर मधुर तक पहुंच गई। जब उसने अपनी झुकी पलकों को एक बार उठाया और मधुर पर भरपूर नज़र डाली तो उसे लगा कि वो सपनों की दुनिया में है और उसका राजकुमार उसके सामने उसे ले जाने को खड़ा है। मधुर के दोस्तों तथा मधु की सहेलियों के बीच चुटकियों के साथ मधुर तथा मधु ने एक दूसरे को माला पहना कर एक दूसरे का वरण किया। और फिर चला बधाइयों तथा फोटोग्राफी का सिलसिला। गहराती रात के साथ फेरों की रस्म पूरी हुई और सुबह सवेरे मधुर उसे डोली में बिठा, उसके सपनों को पंख लगा कर उसे अपने घर के लिए विदा करा लाया।

ससुराल के दरवाजे पर उसके स्वागत की तैयारियां काफी जोर शोर से की गई थीं। उसे अत्यंत आत्मीयता, प्यार और आदर से गृह प्रवेश कराया गया। बीच-बीच में मधु कनखियों से मधुर को देखना नहीं भूलती थी और शायद मधुर की हालत भी ऐसी ही थी। उसे अपने घर लाने पर मधुर फूले नहीं समा रहे थे। गृह प्रवेश के साथ ही फिर से रस्मों का लम्बा सिलसिला शुरू हो गया। यद्यपि शादी की सभी रस्में मधु को एक आनन्द की अनुभूति करा रही थीं परन्तु उसे आकुलता थी मधुर के एकान्त में मिलने की, उससे जी भरकर कर बातें करने की, अपनी कहने की तथा उसकी सुनने की। और धीरे-धीरे वो घड़ी भी आ गई जब उसे उसकी ननदें एक महकते हुए कमरे में छोड़ गईं। उसने जब उनीदी पलकों से फूलों से सजे कमरे को देखने की कोशिश की तो उसे सामने सोफे पर बैठे अपने राजकुमार के दर्शन हो गए। उसने लजाते, सकुचाते एक कदम आगे बढ़ाया तो मधुर ने उठकर उसका स्वागत किया और उसे बड़े प्यार से कमरे के अन्दर ले आए। अब क्या होगा, इस आशंका से मधु का दिल धड़क ही रहा था कि मधुर ने कभी न खत्म होने वाली अपनी दिलचस्प बातों का सिलसिला शुरू कर दिया। उनके बोलने के अन्दाज़ और बातों को मज़ेदार बनाने वाले स्टाइल पर मधु मोहित सी हो गई। मधुर के आत्मीयता भरे व्यवहार से वो सहज हो गई और उसके दिल की परतें भी खुलने लगी। मधुर का कभी ठहाके लगाना और कभी संजीदा हो जाना और बीच में ही उसके सौन्दर्य की प्रशंसा कर देना अनोखा था। पूरी रात कब बीत गई उसे पता भी नहीं चला।

सुबह के उजाले के साथ ही फिर से घर में शोर शराबा शुरू हो गया। अब किसी मेहमान के जाने की आवाज़ आ रही थी तो शादी में काम आए किसी सामान को लौटाने की कोशिश की जा रही थी। इसी बीच मधु भी नहा धो कर तैयार हो गई और उसे मेहमानों के बीच लाकर बिठा दिया गया। मधुर का उसके आस पास मंडराना उसे बहुत भा रहा था। मधुर उसकी झलक पाने तक को बेताब नज़र आ रहे थे।

इसी तरह से समय पंख लगा कर उड़ रहा था और वे मधुर की आगोश में बेसुध सी होती जा रही थी। जब मधुर ने यह सुनाया कि उसकी छुट्टियां खत्म हो गई हैं और उसे कल वापस ड्यूटी पर जाना है तो जैसे उसकी गहरी मदहोशी टूट गई। जुदाई का अहसास उसे अन्दर तक कंपा गया था लेकिन उसका मधुर के साथ जाना भी मुमकिन नहीं था क्योंकि मधुर को अगले दिनों सियाचिन ग्लेशियर ड्यूटी पर जाना था उसके बाद ही उसे वो श्रीनगर स्थित अपने बेस कैंप में ले जा सकता था। वह जानती थी कि उसका मधुर के बिना जीना मुश्किल है लेकिन धीरज करने के सिवाय उसके पास और कोई चारा भी नहीं था। उधर मधुर भी विकल थे परन्तु देश के लिए अपना कर्त्तव्य निर्वाह करना वो अपना पहला फर्ज समझते थे। रात ढली, वो मधुर की बांहों में बिलखती रही और वे उसे ढाढ़स देते हुए जल्दी ही लौटकर आने और उसे फिर से उसकी सपनों की दुनिया में ले जाने का वादा करते रहे। अब वो समय भी आ गया जब मधुर को प्रस्थान करना था। उसकी डबडबाई आंखों से वो नजर नहीं मिला सके और अपनी मम्मी व पापा के पैर छूकर उन सबसे विदा हो गए। मधुर चले गए तो उसे लगा जैसे उसकी दुनिया सूनी हो गई है लेकिन एक आस के साथ उसकी ज़िन्दगी बंधी थी कि वो वापस आएंगे और उसे अपने साथ ले जाएंगे।

श्रीनगर पहुंच कर मधुर से उससे फोन पर बात की और दूसरे दिन यहां से बढ़ने तथा इसके बाद कान्टेक्ट नहीं हो पाने का संदेश दिया। साथ ही उसे बहादुर फौजी की बहादुर बीबी बनकर हौंसला रखने का भी निर्देश दिया। मधु चुप होकर उनकी बात सुनती रही। उसने हाथ उठाकर भगवान से प्रार्थना की कि उसके पति जल्दी ही अपना मिशन पूरा करके कामयाब हो कर लौटें।

मधु की जुदाई का एक-एक दिन एक साल की तरह बीत रहा था। वो दिन भर देवर ननदों में घिरी रहती लेकिन उसका मन मधुर के आसपास ही भटकता रहता। सास, ससुर भी उसके लाड़ में कोई कसर नहीं छोड़ रहे थे। हर कोई इस कोशिश में था कि वो किसी भी तरह से खुश रहे। वो बाहर से खुश दिखाने का भरसक प्रयास करती थी और उसके अन्दर जलती विरह की अग्नि किसी को दिखाई नहीं पड़ती थी। कहते हैं कि हर रात के बाद सुबह का उजाला भी होता है और मधु के जीवन में भी वो सुखद उजाला आ ही गया। मधुर का फोन आया कि वो अपने मिशन में सफल रहा और उसे अब छुट्टी मिल रही है और वो शीघ्र ही मधु को अपने साथ ले जाने के लिए आ रहा है। उसने मधु को यह खुशखबरी भी सुनाई उसे श्रीनगर में फौज का क्वार्टर मिल गया है जहां से वो अपनी ज़िन्दगी की खुशनुमा शुरुआत करेंगे। उसने मधु से अपनी तैयारी कर लेने को कहा।

इतना सुनकर तो मधु के फिर से जैसे पंख उग आए थे। उसे लगा रहा था जैसे वो हवा से भी हल्की हो गई है और अभी आकाश से उड़ कर अपने पिया के पास पहुंच जाएगी। अपनी धुन में मगन होकर वो मधुर के साथ जाने की तैयारी करने लगी। उसके सास ससुर

भी खुश थे। वे बहू के बिना उदास हो जाएंगे, ये वो जानती थी परन्तु फिर भी उन्हें बहू के अपने बेटे के पास जाने की खुशी थी।

अगले ही दिन मधुर पहुंच गए और उन्होंने साथ-साथ कुछ दिन घर में गुजार कर श्रीनगर की ओर रवानगी की। मधु ने गृहस्थी का छुटपुट सामान ले लिया था लेकिन अभी तो उसे वहीं जाकर अपना घर बसाना था। मधुर के साथ में उसे यह काम मुश्किल नहीं लग रहा था। आखिर वो अपनी मंजिल पर पहुंच ही गए और जब मधुर ने दोनों हाथ आगे करके उसे अपने छोटे किन्तु बेहद सुंदर फ्लैट में पैर धरने का आमंत्रण दिया तो वह खुद को किसी खुश किस्मत से कम नहीं समझने लगी। इतने में ही मधुर उसके कान के पास आकर फुसफुसाए कि इन हसीन वादियों में ये हमारा हनीमून भी है। लाज से लाल हुए मुंह से मधु ने शरारत से मधुर को घूरा तो मधुर ने आगे बढ़कर उसे अपनी बांहों के घेरे में ले लिया। मधुर के प्यार के साथ उसने कब छोटा-छोटा तिनका कर के गृहस्थी बसाई उसे पता ही नहीं लगा। वो मधुर के रंग में ही रंग गई थी। जब मधुर ड्यूटी पर होते थे तो उसे उनके आने का इन्तजार रहता था और जब वो उसके पास होते थे तो उसे लगता था कि जैसे फिर कभी सुबह न हो। इसी तरह हंसी खुशी चल रहे जीवन के रथ में दो नन्हें-नन्हें पहिए भी जुड़ गए। अंकिता और उससे छोटा अंकुश उनकी ज़िन्दगी में एक अजीब सी खुशी लेकर आए थे। दो नन्हें चिरागों से उनका घर रोशन हो गया ता। कभी अंकिता की तोतली जुबान उन दोनों को अन्दर तक प्रसन्न कर जाती थी तो जब कभी अंकुश की किलकारियों से उनका घर गुंजायमान हो उठता था तो उन्हें अपने घर के संगीतमय होने का अहसास होता था। इसी बीच मधुर भी कैप्टन से मेजर का दर्जा हासिल कर चुका था।

इसी प्रकार से मधु तथा मधुर अपने बच्चों के साथ मस्ती के दिन काट रहे थे। अब तो अंकिता सात साल की और अंकुश पांच साल का हो गया था। उनको उन पर पड़ने वाली जीवन की काली छाया का आभास तक न था। 17 फरवरी की उस मनहूस सुबह को मधु कभी भी अपनी ज़िन्दगी में भुला न सकी। पिछले दिनों हुई भारी बर्फबारी के बाद उस सुबह ही मौसम खुला था। चारों ओर बर्फ की सफेद चादर से टकरा कर लौट कर आ रही थी खुली धूप हड्डियों तक को रोमांचित कर रही थी। बच्चों को तैयार करके मधु सुबह ही स्कूल भेज चुकी थी। वो मधुर की तैयारी में लगी थी। उसके फौजी को ड्यूटी पर जाना था। उसकी यूनिफॉर्म से लेकर रूमाल तक मधु ने साफ सुथरे तरीके से तैयार करके रखा था। मधुर भी इतने उतावले थे कि वो घर में बच्चों जैसे ही बन जाते थे। हर छोटी-छोटी चीज़ के लिए मधु को आवाज लगाते थे। 'आईऽऽऽ, अभी एक मिनट' कहती हुई मधु दौड़ी जाती थी और सामने पड़ी चीज़ को नहीं उठाने के लिए मधुर को प्यार भरी एक डांट पिला देती थी। इस तरह देख कर मधु को कभी नहीं लगता था कि यह छह फुट दो इंच का फौजी जवान देश की सुरक्षा की जिम्मेदारी कंधों पर लिए हुए है लेकिन उसके सीनियरों तथा सहयोगियों को उसकी कर्मठता तथा लगन पर गर्व था और वे उसकी काबलीयत की तारीफ करते नहीं थकते थे।

उस बाहर से चमकती परन्तु भीतर से काली सुबह को भी मधुर हमेशा की तरह फौजी बनकर तैयार हुए। उन्होंने हर रोज की तरह मधु को आलिंगन में लिया तथा उस पर मस्ती भरी मुस्कान उछाल कर फ्लैट की सीढ़ियां उतर लिए। मधु भी उन्हें 'बाय' करने के लिए 'टेरस' पर चढ़ गई जहां से वो हमेशा मधुर को हाथ हिला कर आगे बढ़ने का हौसला देती थी। उसने मधुर को दूर से 'बाय' कहा और आदतन सीढ़ियां उतर कर फ्लैट पर आ गई। उसने तो सपने में भी नहीं सोचा था कि यह उसका मधुर का अन्तिम अभिवादन होगा। वह घर में इधर-उधर बिखरा हुआ सामान समेटने का उपक्रम कर ही रही थी कि अचानक गोलियां चलने की आवाज़ आई और किसी के चीखने की भी। इस तरह के धमाकों से घबराई मधु वापस छत्त पर चढ़ गई जहां उसने देखा कि एक फौजी एक मोटर साइकिल सवार के साथ हाथापाई कर रहा है। इस फौजी ने उस सवार को काबू कर ही लिया था कि अचानक एक काली एम्बेसेडर मोटरसाइकिल सवार के पीछे आई और उससे एक व्यक्ति ने आधा बाहर निकलते हुए खिड़की से एक साथ मशीनगन दागना शुरू किया और एक-एक करके सारी गोलियां फौजी के सीने में दाग दीं। पलक झपकते ही वो काली कार वहां से ओझल हो गई और वो फौजी लड़खड़ा कर ज़मीन पर गिर पड़ा। इस दिल दहलाने वाले नज़ारे को देख कर भी मधु के दिमाग में एक बारगी भी यह नहीं आया कि वो लम्बा चौड़ा फौजी उसका मधुर भी हो सकता है। देखते ही देखते भीड़ जमा हो गई और सभी फ्लैटों से लोग निकलकर उस तरफ जाने लगे। मधु ने भी अपने हाउसकोट की गांठ कसी और वो भी धड़ाधड़ नीचे उतर गई। किसी अनहोनी की आशंका के साथ भीड़ में घुसकर जब उसने झांका तो उसको अपना दिल बैठता सा प्रतीत हुआ। उसने देखा कि चारों तरफ फैले खून के बीच उसी का फौजी पड़ा हुआ है। उसे अपने जांबाज फौजी की तरह निश्चल पड़े रहने की बहुत हैरानी हुई। उसका मन चाहा था कि उसका फौजी उठ खड़ा हो और दुश्मनों का मुकाबला करे लेकिन वो यूं ही बेजान पड़ा था। मधु को लगा जैसे उसके होशोहवास गुम हो गए हैं। वो जो कुछ सामने देख रही थी उसे उसका दिल तथा दिमाग मानने को तैयार नहीं था। वह पत्थर हो गई थी। उसकी सोच शून्य हो गई थी उसका मस्तिष्क जड़ हो गया था। उसकी वो स्थिति हो गई जिसमें उसे न तो कुछ सुनाई दे रहा था ना ही कुछ दिखाई। अचानक उसे लगा उसका सब कुछ लुट गया है। उसे लगा उसके शरीर से जान खत्म हो रही है। वो लड़खड़ाई और बेहोश हो गई। उसके बाद क्या हुआ, उसे कुछ पता नहीं लगा।

जब उसका अचेतन मन धीरे-धीरे चेतनता प्राप्त करने लगा तो उसे लगा कि उसके घर में भीड़ उमड़ी हुई है। यद्यपि उसकी आंख अभी खुल नहीं पा रही थी लेकिन उसकी अर्द्धचेतनावस्था में उसे कुछ इस तरह की बातें सुनाई पड़ रही थी कि 'उग्रवादियों ने हमला किया था', 'वैली' में उग्रवाद ने हिंसक रूप ले लिया है, किसी फौजी को मारने का यह पहला वाक्या है, अब उग्रवादियों ने वर्दीधारियों को ही अपने निशाने पर रखा है, आतंकवादियों ने काले कपड़े पहन रखे थे, पहले नकाबपोश को तो मेजर मधुर ने 'कवर' कर लिया था लेकिन उसके पीछे आए आतंकवादियों ने तो पूरी की पूरी 26 गोलियां मेजर के सीने में उतार

दीं। मधु का मस्तिष्क उसके शरीर पर नियन्त्रण करने की कोशिश करने लगा। धीरे-धीरे जब उसने आंख खोली तो उसने देखा आस पास की औरतों ने उसको संभाला हुआ है। वो विक्षिप्त सी पड़ी है और सामने मधुर का शव सफेद चादर में लिपटा पड़ा है। इतनी ही देर में मधुर के फौजी साथी अंकिता और अंकुश को भी स्कूल से लिवा लाए। चेहरों पर हैरानगी का भाव लिए वो मासूम जब दरवाजे से दाखिल हुए तो ऐसा लगा रहा था कि जैसे अभी उन्हें अपने सिर से साया उठने की खबर नहीं है। घर का अजीब सा माहौल, मां का बेहाल होना, भीड़ में किसी के रोने, किसी के मेजर की बहादुरी के किस्से गढ़ने तथा किसी के उनकी मां के प्रति हमदर्दी जताने के शब्द भी उन्हें कुछ नहीं समझा पा रहे थे। किसी अनहोनी की आशंका उन्हें अन्दर तक त्रस्त किए जा रही थी। उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था। एक ओर धीरे से अपना स्कूल का सामान रख कर वे अपनी मां की और बढ़ने लगे। जैसे ही मधु के समीप पहुंचे मधु की सहनशीलता का बांध टूट गया वो उन्हें चिपटा कर बिलख पड़ी।

इधर मधुर के अन्तिम संस्कार की तैयारी हो रही थी। एक फौजी की शहादत पर फौज की एक टुकड़ी उन्हें 'गार्ड ऑफ ऑनर' देने के लिए तैनात हो गई। किसने मधु तथा मधुर के घरवालों को इस अनहोनी की खबर दी, मधु को नहीं मालूम। वो तो एक जिन्दा लाश जैसी हो गई थी जिसकी कोई भावना थी, न ही कोई संवेदना। सब कुछ होता रहा। कभी बिलखकर तो कभी पत्थर बन कर मधु अपने मधुर को अलविदा कहती रही। जब मधुर का जनाज़ा उठा तो वो कह उठी कि 'तुम ने मेरा हमेशा साथ निभाने का वादा किया था तुम आज मुझे किसके भरोसे छोड़ चले हो, तुम बेवफा हो, तुम निर्मोही हो, तुमने एक बार भी मेरे बारे में नहीं सोचा और यूं मेरा साथ छोड़ दिया। उसकी हालत किसी से नहीं देखी जा रही थी। उसे पता नहीं कि कैसे उसके मासूम लाडले ने अपने आदर्श पिता को किस तरह से पवित्राग्नि के हवाले किया। और फिर सब कुछ भस्म हो गया। बस रह गई तो मधुर की यादें, उनके पास होने का अहसास और कानों में गूंजती उनकी शोख चंचल आवाजें।'

दिन बीतते गए, मधु का धीरे-धीरे असलियत से साक्षात्कार होने लगा। उसे ज़िन्दगी की कठोरता महसूस होने लगी। धरातल पर ज़िन्दगी के मायने उसे समझ आने लगे। जिस मधुर ने उसे 'ड्राइंग रूम डॉल' बना कर रखा था, उस मधुर ने कभी नहीं सोचा था कि उसकी प्रियतमा मधु को यूं दर दर की ठोकरें खानी पड़ेगी। मधुर को अपना ग्रास बनाने वाले आतंकवादियों को देने के लिए मधु के पास बद्दुआएं कम पड़ने लगीं। कभी वो मधुर की सोच में होती तो कभी दो मासूम चेहरों को अपने से लिपटे देख अन्दर तक सहम जाती। तो कभी सोचती कि उसके सुहाग को लूट कर, उसके बच्चों को बेसहारा बना कर आखिर आतंकवादियों को क्या मिला ? ये उनकी कैसी लड़ाई है जिसमें निर्दोष मधुर की बलि चढ़ा दी गई और उसे तथा उसके बच्चों को खाक छानने पर विवश होना पड़ा परिस्थितियों से मजबूरन समझौता कर मधु ने नौकरी कर ली। एक स्कूल में उसे अध्यापिका की जगह मिल गई। वह एक अबला थी लेकिन हालात यूं बदले कि उसे सबला बनना पड़ा। अपने बच्चों की परवरिश की खातिर उसे समाज के सामने

उठ कर खड़ा होना पड़ा। जब मधुर शहीद हुए थे तब कुछ दिनों तक उसकी शहादत सुर्खियों में छाई रही। राज्यपाल, मुख्यमंत्री से लेकर हर नेता उसके घर शोक मनाने आया लेकिन जैसे-जैसे समय गुजरता गया, मधुर की शहादत पर धूल जमती गई। आज उसे पूछने वाला शायद कोई नहीं था। घर-परिवार के लोग भी अपने-अपने कामों में व्यस्त हो गए थे। मधु का बस सहारा था तो उस मधुर की यादों का जिसने जिन्दादिली दिखाते हुए एक बार मधु से कहा था कि 'यदि मैं देश की खातिर शहीद भी हो जाऊं तो तुम एक शहीद की अर्द्धांगिनी बन कर फख्र से जीना।' आज मधु के लिए ये ही शब्द संबल बने हुए थे। उसकी नजरों के सामने मधुर की 'गन' होती और जब भी उसे कोई परेशानी आती तो उसे लगता कि मधुर उससे बात कर रहे हैं और उसको हालात का मुकाबला करने के लिए तैयार कर रहे हैं।

अचानक किसी ने उसे झिंझोड़ा तो मधु ख्यालों के आसमान से उतर आई। हॉल में यूं ही ढोलक की थाप जारी थी और उससे उसकी भाभी बीच में आने तथा नाचने का आग्रह कर रही थी। सभी जानते थे कि मधु बेहतरीन 'डांस' करती है लेकिन अब उसने सभी कुछ भुला दिया है।

भाभी उससे मनुहार कर रही थी लेकिन मधु का मन जरा भी नहीं लग रहा था। उसने जब अपनी सूनी, डबडबाई आंखें उठा कर भाभी को ताका तो भाभी उसके दर्द को समझकर कांप गई और धीरे से उसका हाथ छोड़कर आगे बढ़ गई।

आज मधु ने ज़िन्दगी से संघर्ष करते-करते अंकिता को डॉक्टर बना दिया था वो इस समय पुणे में 'इन्टर्नशिप' कर रही है और अंकुश उसका मासूम सपना आज इन्जीनियरिंग की पढ़ाई में लगा है। दोनों बच्चे उसके संघर्ष तथा त्याग का आदर करते हैं। उसकी नौकरी भी पक्की हो गई है तथा मधुर की पेंशन भी मिल रही है। वो आर्थिक रूप से किसी पर निर्भर नहीं है। सरकार ने उसे थोड़ी सी जमीन भी दी है जिस पर उसने अपने रहने के लिए दो कमरे बना लिए हैं। आज भी उसके सबसे पास मधुर की वो वर्दी होती है जिस पर गोलियों से छलनी होने तथा खून से सने होने के निशान मौजूद हैं। वो उसे हमेशा मधुर की जांबाजी तथा आतंकवादियों की कायरता का अहसास दिलाती है।

अब तो उसकी ज़िन्दगी की शाम भी ढलने लगी है और उसे केवल इन्तज़ार है तो उस दिन का जब वो अपने कर्तव्यों की इतिश्री करके दूर कहीं गगन में गुम हो जाएगी जहां उसका उसके मधुर से 'मधुर मिलन' होगा।

° ° °

संपर्क : *द्वारा कश्मीर टाइम्स, जम्मू।*

ढलान

❑ बलजीत सिंह रैणा

बहुत सोच विचार करने के पश्चात् वह चलने के लिए तैयार हो गया था।

वे दिसंबरी पौष-मास के ठंडे दिन थे और मुट्ठी भर धूप तलक पास नहीं थी। दिन भर धुंध और कोहरे का वातावरण बना रहता। और इस कड़ाके की ठंड ने उसे पत्नी के साथ विश्वासघात करने के लिए उकसा दिया था।

गर्म कपड़ों से लदा हुआ वह अपने अरदली के साथ क्वार्टर से निकल पड़ा था। पहाड़ी पगडंडी से उतरते हुए वह एकाएक अच्छे दिनों को याद करने लगा था।

वे गर्मियों के दिन थे और उसका उस पहाड़ी इलाके में अभी नया-नया तबादला हुआ था। उसकी पत्नी शोभा भी साथ आयी थी और इस बात के लिये खुश थी कि जम्मू की अपेक्षा यहां गर्मी कोई अधिक नहीं थी और सुबह-शाम ठंडी हवा बहती रहती थी। बड़े मज़ेदार दिन थे। लेकिन ठंडे मौसम के आते ही शोभा की पुरानी कई बीमारियां सुरजीत हो उठी थी, और वह वापस जम्मू लौट गयी थी।

शोभा लौट गयी लेकिन उसे वहीं रहना था उस पहाड़ी इलाके में ... अकेले... तन्हा... जहां चीड़ और देवदारों के पेड़ों को रूई जैसी सफेद बर्फ अब वस्त्रों-सी ढकने लगी थी।

उसका अरदली छज्जू राम अच्छी तरह से जानता है कि साहब लोगों को खुश कैसे रखा जाता है। शायद वह उससे पहले दूसरे अफसरों को भी ऐसे ही खुश रखा करता था।

सामने ढलान में बने एक घर की ओर इशारा करते हुए वह बताने लगा कि लाजो वहीं उस घर में अपनी बच्ची के साथ रहती है, कि उसकी बच्ची अब पांच वर्ष की हो गयी है, कि उसे एक धोखेबाज़ ने कुंवारी मां बना दिया था, कि उसके पिता ने गुस्से में आकर उस धोखेबाज़ को कुलहाड़ी से मार डाला था, कि उसके पिता को फांसी लग गयी थी, कि बाद में बच्ची को जन्म देने के बाद वह साहब लोगों से रुपया पैसा लेकर उन्हें खुश करने लगी थी, कि वह बड़ी खूबसूरत और कामुक औरत है, कि मैंने उससे आपके लिए बात कर ली थी, कि....।

घर के पास पहुंच कर छज्जूराम ने पुकारा- ''लाजो!''

एक छोटी-सी बच्ची ने दरवाज़े के पीछे से सिर निकाल कर बाहर देखा और फिर बाहर आकर सामने बरामदे में खड़ी हो गयी।

छज्जू राम ने बताया- "यह लाजो की बेटी चन्दा है।"

"मां पानी लेने गयी है।"- चन्दा ने बताया।

"कोई बात नहीं, हम इन्तज़ार करेंगे। अभी आती ही होगी।" घर में घुसते हुए छज्जूराम ने उसे अंदर बुला लिया था- 'आईये न साहब!'

घर के भीतर कदम रखते हुए एकाएक उसे लगा कि यहां आकर उसने अच्छा नहीं किया और उसे अपने अरदली के साथ इस तरह से इतना अनौपचारिक नहीं हो जाना चाहिए था।

कुर्सी वगैह तो उस घर में कोई थी नहीं, हां एक खटिया पर मैला-सा बिस्तर ज़रूर बिछा हुआ था, जिसमें से अजीब-सी सीलन भरी महक आ रही थी। चारपाई पर बैठने के बाद उसने महसूस किया कि दरवाज़े के साथ लग कर खड़ी बच्ची की आंखें लगातार उसे देखे जा रही थीं। उसे लगा कि वह अधिक समय तक इन नन्हीं मासूम आंखों के सामने नहीं बैठ पाएगा और एकाएक उठ खड़ा हुआ।

"चलो छज्जूराम, फिर कभी...."

"पर साहब, आती ही होगी लाजो।"

लेकिन तब तक वह कमरे से बाहर निकल चुका था। बाहर ड्योढ़ी से एक खूबसूरत औरत पानी से भरे दो मटके लिए घर में दाखिल हुई- एक मटका सिर पर और दूसरा कमर में कूल्हे पर टिका हुआ। उसे देखकर वह मुस्कुराई- 'आप आ गये, साहब!'

'साहब जी, यही लाजो है जी!'- छज्जूराम की आवाज़ उसके कानों में पड़ी।

उस बला की पहाड़ी खूबसूरती ने उसके कदमों को जैसे बांध लिया था। वह पहाड़न तो अपने आप में ही पहाड़ियों का खूबसूरत-सा एक सिलसिला थी।

"आप बाहर क्यों खड़े हैं, अंदर आईये न, साहब ?"- कहते हुए वह थोड़ा झुककर बरामदे से होती हुई कमरे में दाखिल हो गयी थी।

वह कमरे की ओर बढ़ने ही वाला था कि दरवाज़े के पीछे से बाहर उसकी तरफ देखता हुआ बच्ची का चेहरा उभरा। आह! इतना मासूम-सा खूबसूरत चेहरा। जाने क्यों वह आगे नहीं बढ़ पाया था। झट से वह छज्जूराम की ओर घूमा- 'इसे क्वार्टर में भेज देना।'- कहा और ड्योढ़ी में से बाहर निकल गया।

छज्जूराम को कुछ समझ में नहीं आया।

'कहां गए, साहब ?' - लाजो ने बाहर निकल कर पूछा तो छज्जूराम ने कन्धे उचका दिए।

'मुझसे कोई गलती हो गयी क्या ?'- उसने फिर पूछा।

'मालूम नहीं, तुम्हें क्वार्टर में आने को बोले हैं।'

'हां भई, बड़े साहब हैं, ग़रीब के घर में कैसे बैठेंगे।'

'अरे ऐसे कामों में अमीरी-गरीबी का सवाल कहां आता है बीच में ?'

'फिर क्या कारण रहा होगा ?'

'यही तो समझ में नहीं आया। खैर, तुम शाम को बंगले पर चली जाना।'

शाम को लाजो जब साहब के बंगले पर पहुंची तो वह छत्त पर से दूर ढलानों पर फैले देवदार के जंगल को देख रहे थे। छज्जू राम ने लाजो को आते ही छत्त पर भेज दिया था और वह काफी देर से साहब के पीछे खड़ी उनके मुड़ने का इंतजार कर रही थी। लेकिन जब उससे रहा नहीं गया तो उसने पूछ ही लिया था- 'क्या देख रहे हैं साहब ?'

वह एकाएक चौंककर घूमा था- 'ओह तुम! कब आयी ?'

'मैं तो कब से आ कर खड़ी हूं, लेकिन आप इतनी देर से क्या देख रहे थे ?'

'ढलान।'- कहते हुए वह फिर ढलान की ओर घूम गया था।

लाजो भी उसके नज़दीक चली गयी थी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि कैसा साहब है। कब से आकर खड़ी हूं और यह ढलान की ओर ही देखे जा रहा है। पहले वाला साहब तो उसे सामने पाते ही दबोच लेता था। अजीब आदमी है!

'यह ढलान देख रही हो न लाजो ?'- उसने सामने इशारा करते हुए कहा था।

लाजो ने मुंह बिदकाते हुए लापरवाही से उत्तर दिया था- 'यह ढलान तो रोज ही देखती हूं।'

'रोज देखती हो?'- उसे जैसे विश्वास न हुआ हो- 'यह ढलान तुम्हें कभी कुछ नहीं कहती ?'

'यह आप कैसी बातें कर रहे हैं, बाबू साहिब ? भला पहाड़ी ढलान भी कभी किसी से कुछ कहती है!'

'क्यों नहीं कहती ? ज़रूर कहती है। पहाड़ों में ज़िन्दगी का फ़ल्सफ़ा छुपा हुआ है।'

'क्या छुपा हुआ है बाबू ?'

'फल्सफ़ा।'- उसने स्पष्ट किया था।

'यह कौन-सा फल होता है ?'

हंस पड़ा था वो। फिर समझाते हुए बोला- 'यह फल नहीं होता है बल्कि फल का दर्शन होता है।'

'आप भी पहेलियां बुझाते हैं, बाबू साहब। जो फल ही नहीं होता है, उसका दर्शन कैसे हो सकता है ?'

'क्यों, इंसान एक फल नहीं है ? जैसे पेड़ के साथ फल लगता है वैसे ही औरत-मर्द के गृहस्थी के पेड़ पर भी बच्चे-सा फल लगता है।'

लाजो को लगा जैसे बात उसकी समझ में आ गयी है, तपाक से बोली- 'तो ऐसे कहिए न औरत-मर्द वाला फल। पर ऐसे फल छत्त पर इस तरह दूर-दूर खड़े रहने से थोड़े ही लग जाते हैं।'

वह उसकी बात सुनकर मुस्कुरा पड़ा था। फिर जब लाजो ने कहा- 'नीचे कमरे में चलते हैं'- तो उसने 'न' में सिर हिला दिया था।

'पहले मेरी बात का जवाब तो दे दो।'

'कौन-सी बात ?'

'यही कि.. यह पहाड़ी ढलान! तुमसे क्या कहती है ?'

लाजो खीझ उठी थी- 'फिर ढलान! मुझे नहीं मालूम।'

लाजो के चेहरे पर उभरे भाव देखकर उसने जैसे इरादा बदल कर कहा था- 'आओ, नीचे चलें।'

कमरे में पहुंचते ही लाजो निर्लजता से पलंग पर कुछ इस तरह से फैल गयी, जैसे उसकी देह एक जिस्म होने के साथ-साथ ही एक भरपूर निमंत्रण भी हो, कि आगे बढ़ो और मुझ में समा जाओ।

उसने लाजो के जिस्म पर एक भरपूर नज़र डालने के बाद कहा- 'तुम क्या समझती हो, मैं.तुम्हारे जिस्म का भूखा हूं ?'

'मर्द तो औरत के जिस्म के ही भूखे होते हैं।'- स्पष्ट कह गयी लाजो।

'लेकिन मेरी भूख इतनी छोटी नहीं है। मैं बहुत ज्यादा भूखा हूं। मुझे तन की भूख के साथ-साथ ही मन की भूख भी लगती है। इसीलिए मैंने छत्त पर तुमसे कहा था कि यह पहाड़ी ढलान कुछ कहती है। जानती हो क्या कहती है ?'

लाजो ने लेटे-लेटे ही नहीं में सिर हिलाया था।

'यह कहती है कि आज तुम जवानी की चोटी पर खड़े हो और इस चोटी पर पहुंचने के लिए इन्सान को पहाड़-सी ज़िन्दगी के नीचे बचपन से शुरू करना पड़ता है। आहिस्ता-आहिस्ता इन्सान उम्र के कई सालों की सीढ़ियां चढ़ता हुआ इस जवानी की चोटी पर पहुंचता है... और चोटी के बाद ढलान शुरू होती है। ज़िन्दगी की इस ढलान में जब कोई हमें पुराने बूढ़े समझ कर देखना भी पसंद नहीं करेगा, तब भी तुम मुझे प्रेम करो और मैं भी तुम्हें आज की तरह ही चाहता रहूं- एक ऐसे अटूट रिश्ते की कल्पना देती है यह ढलान।'

लाजो उठकर बैठ गयी थी। उसे यकीन नहीं आ रहा था कि उसके कानों ने जो कुछ भी सुना है वह बाबू साहब ही कह रहे हैं। सचमुच- कैसा बाबू है यह!

उसने फिर कहा था-'लाजो मुझ से प्रेम करना है तो इतना करो कि हम उम्र की ढलान में अंत तक साथ दे सकें।'

एकाएक लाजो को महसूस हुआ कि ज़िन्दगी में पहली बार किसी मर्द से पाला पड़ा है, जिसने बुढ़ापे तक साथ देने की, सहारा बनने की बात कही है।

.... और फिर जब इस नये रिश्ते की गर्माहट उनके जिस्मों में घुल मिल गयी तो शांत होते ही उसने लाजो को बताया कि वह शादी-शुदा ज़रूर है लेकिन वह अपनी पत्नी से खुश नहीं है; कि उसकी पत्नी अभी तक मां नहीं बन सकी, कि उसका सब से बड़ा सपना पिता बनने का है, कि उसकी शादी को चार वर्ष हो चुके हैं, कि आज वह उसे पाकर बहुत खुश है, कि उसे अब किसी और के साथ सोने की ज़रूरत नहीं है, कि वह उसकी सारी जिम्मेदारियां ले लेगा, कि वह उससे मंदिर में गुप्त विवाह भी कर लेगा, कि इस विवाह के बारे में किसी को पता नहीं चलना चाहिए, कि उसकी नौकरी जा सकती है, कि......

आज लाजो की बेटी दूर कहीं किसी बोर्डिंग स्कूल में पढ़ती है। साल में एक बार छुट्टियों में घर आती है। उसका साहब भी अपनी जुबान का पक्का निकला। हालांकि उसकी बदली हो चुकी है लेकिन वह तीन-चार महीने में एक बार प्रायः उसके पास आता रहता है। चाहे दो दिन के लिए ही आए, मगर आता ज़रूर है।

बस एक ही अफ़सोस रह गया है लाजो को-वह भी साहब की पत्नी की तरह ही साहब के लिए बांझ ही निकली। दस साल कम नहीं होते। जब ज़रूरत नहीं थी तो बिन ब्याही ही मां बन गयी थी और पिछले दस सालों में चाहकर भी नहीं बन पायी। 'यह परमेश्वर भी अजीब खेल खेलता है!'- वह प्रायः सोचती है।

ऐसा नहीं कि उसे साहब से गर्भ ठहरा ही नहीं। एक बार ठहरा था। तब साहब की बदली नहीं हुई थी। कितने खुश हुए थे साहब- हमेशा अपने बचपन की तस्वीर देखते रहते।

तस्वीर के एक-एक नक्श को अपनी यादों में संभालते रहते। कहते- 'लाजो, अब मुझे लोग गलत नहीं समझेंगे। मैं उनको बताऊंगा कि मैं भी बाप बनने के काबिल हूं... शोभा भी मुझे ही गलत कहती है... मैं उसको बताऊंगा....'

पर तीसरे महीने ही गर्भपात हो गया था। कितने दुखी हुए थे साहब तब! उनका सपना टूट गया था। उनका सब से बड़ा सपना...पिता बनने का सपना!

अब तो चन्दा बेटी भी जवान हो गयी है। मैट्रिक की परीक्षा देगी इस बार। खुशी से उसकी आंखों से आंसू छलक आये थे। उसके खानदान में कोई भी तो मैट्रिक तक नहीं पहुंचा था।

हाय-कितनी सुंदर निकली है चन्दा! किसी की नज़र न लग जाए। किस्मत अच्छी थी जो साहब जैसा आदमी पिता के रूप में मिल गया। वरना क्या पता उसकी ग़रीबी उससे क्या कुछ करवा डालती। लाजो एकाएंक सिहर उठी थी।

'कहां खोई हुई हो ?'

साहब की आवाज़ सुनकर एकाएक उसके चेहरे पर चमक आ गयी थी। झट से स्वागत के लिए उठती हुई बोली- 'दो ही जन तो ऐसे हैं इस दुनिया में जिनकी याद में खो जाना अच्छा लगता है।'

'चन्दा को याद कर रही थी ?' चारपाई पर बैठते हुए पूछ लिया था साहब ने।

लाजो ने साहब के पास ही बैठते हुए कहा- 'हां चन्दा को भी और चन्दा के ईश्वर समान पिता को भी।'

कुछ परेशान हो गये थे साहब। चारपाई पर पीठ लगा कर पसरते हुए बोले- 'अब चन्दा याद करने लायक कहां रह गयी है!'

लाजो का माथा ठनका था। यह साहब आज कैसी बातें कर रहे हैं- 'क्या हुआ चन्दा को ?'

'जवानी चढ़ गयी है उसे। और क्या होना है ?'

''सच सच बताओ, क्या हुआ उसे ?''

उत्तर में साहब ने जेब से एक चिट्ठी निकाल कर लाजो की ओर बढ़ा दी थी- 'लो पढ़ो इसे। मिलते ही सीधा तुम्हारे पास चला आया हूं।'

लाजो ने जल्दी से चिट्ठी खोली थी- 'पर यह तो अंग्रेजी में है।'

'हां, अब अंग्रेज़ हो गयी है तुम्हारी बेटी! अंग्रेज़ी संस्कृति वाला प्यार हो गया है उसे। अपने साथ ही पढ़ने वाले एक लड़के को वो अपना मन ही नहीं तन भी समर्पित कर चुकी है और उसके बच्चे की मां बनने वाली है!'

लाजो के तो पांव के नीचे से जैसे ज़मीन ही खिसक गयी थी। यह क्या कर दिया चन्दा ने! भगवान ने उसे साहब जैसे पिता का आसरा देकर ज़िन्दगी संवारने का इतना अच्छा अवसर दिया था लेकिन उसकी किस्मत में भी अपनी मां की तरह बिन ब्याही मां बनना ही लिखा था।

'हे भगवान। अब क्या होगा?' उसके मुंह से इतना ही निकला।

'अब कुछ नहीं हो सकता लाजो, कुछ नहीं। वह लड़का बड़े घराने का था और आगे पढ़ने के लिए विदेश चला गया है। उस पर यह भेद चन्दा ने इतनी देर के बाद खोला है कि अब डॉक्टर भी कुछ नहीं कर सकते। अब तो उसे हर हाल में बच्चे को जन्म देना ही होगा।'

लाजो की आंखें भर आयी थीं। 'अब मेरी बेटी पर भी बिन-ब्याही मां होने का दोष लगेगा।' वह सुबकने लगी तो साहब ने उठकर उसके कन्धे पर अपना स्नेह भरा हाथ रख दिया। फिर उसकी आंखों से बहते हुए आंसूओं को पोंछते हुए बोले- 'तुम चिन्ता क्यों करती हो ? मैं हूं न ? सब संभाल लूंगा। मैंने सब सोच लिया है। वह बच्चे को किसी दूसरे शहर में जन्म देगी। जहां उसे कोई नहीं जानता होगा। तुम्हें दो-तीन महीने वहां उसके साथ रहना होगा। मैं खुद दोनों को वहां छोड़ के आऊंगा ... चिन्ता की ज़रूरत नहीं। अब कुछ न कुछ तो करना ही है।'

लाजो ने श्रद्धा-भाव से साहब की ओर देखा- 'कैसा देवता स्वरूप इन्सान है साहब!' ज़रूर पिछले जनम में उसने कुछ पुण्य किये होंगे जो साहब जैसा आदमी उसकी ज़िन्दगी में आ गया है। सोचते-सोचते वह स्वतः बोल उठी थी- 'लेकिन होने वाले बच्चे का क्या करेंगे ?'

'उसे मैं अपना लूंगा।'

लाजो ने साहब की आंखों में गहरा झांका तो साहब ने पलकें झुकाकर 'हां' में गर्दन हिलायी थी- 'शायद भगवान ने मेरी झोली में इसी तरह से किसी बच्चे को डालना था।'

लाजो तन से चाहे साहब की बांहों में समा गयी थी लेकिन मन से वह उनके चरणों में जा पड़ी थी।

दूर दराज़ के एक शहर में चन्दा ने एक बच्ची को जन्म दिया और कुछ दिन वहां रहने के बाद लाजो चन्दा और उसकी बच्ची को साथ लेकर अपने पहाड़ पर लौट आयी थी।

आने से पहले उसने साहब को चिट्ठी डाल कर बच्ची के जन्म की खबर कर दी थी और जल्दी आने के लिए भी लिखा था।

लेकिन साहब के आने से पहले ही एक दुर्घटना घट गयी। चन्दा एक पथरीली ढलान पर से फिसल गयी और लहू से लथपथ होती हुई दूर उन दरख्तों तक फिसलती चली गयी थी जिनकी एक टूटी हुई नोकीली शाखा ने पेट में घुसकर उसे और अधिक फिसलने से रोक लिया था।

... और मरने से पहले जो कुछ उसने अपनी मां को बताया वह उसे पागल बना देने के लिए काफ़ी था। लाजो की बांहों में ही दम तोड़ा था चन्दा ने। चन्दा के अंतिम संस्कार से पहले ही वह मुक्त हो जाना चाहती थी उस बोझ से जो चन्दा के अंतिम शब्दों ने उसकी छाती में किसी कील-सा गाढ़ दिया था।

एकाएक वह उठ खड़ी हुई थी। उसने रोती हुई बच्ची को उठाया और उसी पथरीली ढलान की ओर चल पड़ी जहां उस बच्ची की मां चन्दा फिसल कर मौत के मुंह में जा पड़ी थी।

कुछ ही देर में वह ढलान के बीच में खड़ी उन नोकीली चट्टानों को देख रही थी जिन्होंने उसकी फूल-सी बेटी के जिस्म की चमड़ी को यहां वहां से छील दिया था। सहसा उसने अपने कंधे पर एक जाना-पहचाना हाथ का स्पर्श महसूस किया और झट से वह कंधा झटक कर अलग जा खड़ी हुई थी।

'मुझे मालूम पड़ा अभी-अभी कि हमारी बेटी अब इस दुनिया में नहीं रही...'-साहब ने गहरा शोक प्रकट करते हुए कहा- 'छज्जू-राम ने बताया अभी... समझ में नहीं आता, मैं इस दुख की घड़ी में तुम्हें किस प्रकार समझाऊं... मैं तो खुद अपने ही मन को नहीं समझा पा रहा.. कि हमारी बेटी... अब इस दुनिया में नहीं है...।'

'हमारी बेटी मत कहो मेरी चन्दा को!'- एकाएक लाजो फट पड़ी थी- 'वो सिर्फ मेरी बेटी थी.. मेरी। एक दिन तुमने मुझ से पूछा था न- यह ढलान तुम्हें क्या कहती है लाजो... आज मैं फिर वही सवाल तुम से पूछती हूं बाबू साहब, यह ढलान तुम्हें क्या कहती है ? बताओ-बताओ मुझे ... चुप क्यों हो तुम ? ... यही सवाल तूने मेरी बेटी से भी पूछा था न ? मेरे शरीर की तरह उसके शरीर को भी पहाड़ियों का खूबसूरत सिलसिला कहता था तू ? यह देख एक और पहाड़ियों का खूबसूरत सिलसिला मेरी बांहों में सांस ले रहा है... इससे भी पूछेगा कि यह पहाड़ी ढलान इसे क्या कहती है?'

'लाजो, तुम होश में नहीं हो।' उसने उसे शांत करते हुए कहा था- 'बेटी के ग़म ने तुम्हें पागल बना दिया है... संभालो अपने आपको.. कहते हुए साहब उसकी ओर बढ़ा तो

वह चिल्ला पड़ी थी- 'मेरे नज़दीक मत आना तू। बाप बनने का बड़ा शौक था न तुम्हें ?... शक के कीड़े, तू अपने बचपन की तस्वीर बार-बार सिर्फ इसलिए देखा करता था कि जब मैं तुम्हारे बच्चे की मां बनूं तो तुम देख सको कि उसका चेहरा तुम्हारे बचपन के चेहरे से कितना मिलता है। लेकिन मैं तुम्हें तुम्हारी बच्ची का चेहरा देखने नहीं दूंगी। बहुत पूछता था तू ढलान के बारे में.. पर आज मैं पूछती हूं तेरे को बाबू साहब, देखो इस पथरीली ढलान को और बताओ कि यह आज तुम्हें क्या कह रही है? बता धोखेबाज.. बोल।''

'लाजो!'- इस बार साहब गुस्से में चिल्लाया था।

'चिल्लाओ मत बाबू साहब, मैं बताती हूं यह ढलान तुम्हें क्या कहती है। आज यह ढलान तुम्हें कहती है बाबू साहब कि जैसे इस पगली लाजो की बेटी नहीं बची, वैसे ही तेरी बेटी भी नहीं बचेगी... नहीं बचेगी बाबू साहब!'

और इससे पहले कि वह आगे बढ़कर उसकी बांहों में से अपनी बच्ची को छीन पाता लाजो ने वह बच्ची पथरीली ढलान की ओर उछाल दी थी।

० ० ०

संपर्क : पोस्ट बाक्स नं 121, जम्मू -180 001

फिरौती

❑ प्रवीण केसर

अब्बू मियां शुरू से ही अपने आप को दूसरों से ज्यादा दानिश समझते आये है, यह उनकी बचपन से आदत रही है। एक मर्तबा चुनाव में जा खड़े हो गये। तीन बेटों, बहुओं और बीबी की नींद हराम कर दी। पार्टी भी चुनी तो ऐसी चुनी जिसके रियास्ती सदर से लेकर बर्कर तक खुद ही थे। वोट मिलता भी किसका । चुनाव तो हार गये, जमानत बचाना तो दूर रहा अपने मुहल्ले व रिश्तेदारों के वोट ही हासिल कर सके। तोहमत लगा दी अपने परिवार पर कि बेटों और बीवी ने मन से काम नहीं किया इसलिये चुनाव हारा हूं, घर परिवार के लोग ही अगर चुनाव प्रचार मन लगा कर नहीं करेंगे तो इसका असर यकीकन दूसरे लोगों पर भी तो पड़ेगा ही।

बड़ा बेटा याकूब घर से सुबह निकल कर पुलिस और Para-Military Force के दफ्तरों में चक्कर लगा कर तंग आ गया है, मंझला बेटा हबीब बैंक से छुट्टी लेकर, पुलिस के अलावा दूसरे लोगों से मिल रहा है जो अब्बू को छुड़ाने में मददगार हो सकते थे। तीसरा बेटा अम्मां व दूसरी रिश्तेदार करीबी रिश्तेदार औरतों को दिलासा दे-दे कर तंग आ गया है। मगर बात नहीं बन रही है। अम्मा अखबार की सुर्खियां पढ़ कर या दिलासा देने आये लोगों की बातें सुन कर खौफजदा हो जाती है। मन ही मन कांप जाती इस बुढ़ापे में कहीं उन की.....!

अब्बू पुराने खानदानी अमीर थे। खानदानी ख़जाना कहां तक बच कर रह जाता, उम्र भर कोई काम नहीं किया- बीबी से लेकर पड़ोसियों तक को कोसते रहते। सारी उम्र नेता गिरी का भूत सवार रहा, नेता भी नहीं बन पाये। एकड़ों के हिसाब की जमीन टुकड़ों-टुकड़ों में बेच डाली। जुम्मन, धोबी ने दो कमरे क्या खड़े कर लिये बेचारे की शामत आ गयी। लगा दिया इल्जाम उस गरीब पर कि दहशत पसन्दों की मुखबरी करता है नहीं तो इतना पैसा एक धोबी के पास कहां से आ गया। बन्ने हुसैन हजाम का लड़का कुछ दिन नजर नहीं आया तो फौरन कह डाला कि आजाद कश्मीर में हथियारों की ट्रेनिंग ले रहा है।

हालांकि याकूब ने हाथ जोड़ कर ताकीद की थी कि कश्मीर में इन हालात में कौन क्या कर रहा है इस पर अपना तबसरा मत दिया कीजिये। कहीं हम पर या हमारे बच्चों पर आफत न आ जाए।

हबीब को बिलाल पर शक था ये बिलाल की ही कारस्तानी हो सकती है।

एक दिन बिलाल हथियारों से लैस अपने मुहल्ले का चक्कर लगा रहा था और मुहल्ले के लोगों से ताकीद कर रहा जेहाद के नाम पर अपना एक-एक बेटा कुर्बान कर दो। बस फिर क्या था अब्बू भिड़ गये बिलाल से ''तुम कब से जेहाद के ठेकेदार हो गये! चोरों और जेबकतरों से तुम्हारा नाता रहा है। कुरान शरीफ की एक आयत भी पड़ सकते हो। बताओ कहां लिखा है कुरान-शरीफ में कि लोगों से फिरौती लेते फिरो।'' और तान दिया अपना सीना बन्दूक की नली के सामने।

बो बात अलग थी बिलाल चुप रहा और बुजुर्गी का लिहाज करते हुए उसने कुछ नहीं कहा। बस फिर क्या था। अब्बू शेर! जिस वक्त भी अपनी गली मुहल्ले से निकलते सीना चौड़ा कर के निकलते। मुहल्ले के लोग उस वक्त भी कहा करते थे। अब्बू जान का नम्बर लग गया समझो। या तो जेहलम किनारे टुकड़ों-टुकड़ों में कटी लाश मिलेगी या उठा के ले जाएंगे और बदले में मोटी रकम की फरमाईश आयेगी।

तीनों भाई आज सुबह-सवेरे अपने मकान की ऊपरी मंजिल के एक कमरे में बैठे आपस में मशविरा कर रहे हैं कि आने वाले संगीन हालात से कैसे निपटा जाए। अपने बीबी बच्चों को जम्मू भेज दिया जाए। कम से कम बच्चे तो हिफाजत से रहें। कश्मीर में बच्चों का रहना भी तो कोई कारगार साबित नहीं हो रहा है। बच्चे या तो T.V. देखते रहते हैं या घर के अन्दर क्रिकेट खेलते रहते हैं। स्कूल-कालेज कई महीनों से बन्द पड़े रहे हैं। इतने में अम्मा चिल्ला कर अन्दर दाखिल हो जाती है। फूट-फूट कर रोते हुए कहती है- अपनी बीबियों और बच्चों की फिक्र पड़ी हुई है, अपने अब्बू की खबर तक नहीं ला सकते। इस बुढ़ापे में न जाने कौन-सी यातनाएं सहते होंगे तुम्हारे अब्बू। हबीब ''अम्मी जो हम से बन पा रहा है, हम कर रहे हैं आप खुदा के लिये चुप रहिए।''

तीनों भाईयों ने बड़ी मुश्किल से जुग़ाड़ करके अपने रहने और सिर छुपाने के लिये मकान खड़ा किया था। हो सकता है आने वाले समय में इसे छोड़ कर कहीं कश्मीर से भागना न पड़े। इतने में बाहिर से दस्तक होती है। काला कम्बल ओढ़े तारिक खड़ा था। सांकल खुलती है तारिक सीढ़ियां चढ़ कर ऊपरी मंजिल के कमरे में चला जाता है।

तारिक ''सौदा आज भी नहीं बैठा, मैं एक लाख पर अड़ा रहा वो दो लाख से कम लेने को तैयार नहीं है। उनका कहना था जितने दिन बढ़ते जायेंगे फिरौती की रकम में बढ़ौतरी होती जायेगी। मेरी मानो तो बात ही मत चलाओ थक जाएंगे तो अब्बू को वो लोग खुद छोड़ देंगे।''

याकूब ''कहीं चिढ़ खा कर जान ही न ले लें।''

तारिक ''यह मान कर सब्र कर लो कि जान माल कि हिफाजत करने वाला अल्लाह है।''

''याकूब इतने मासूम लोगों की जानें गई हैं, खातूनें बेइज्जत हुई हैं तब अल्लाह क्या बचा पाया। उन मासूमों को इन ज़ालिमों के हाथों।''

तारिक ''कुछ भी कहो सहारा तो अल्लाह'' का ही होता है न। मुसीबत में नाम तो उसी का लेना पड़ता है। आगे क्या हुक्म है मैं वैसा ही कह दूंगा। उनको।'' कह कर चला जाता है।

उसी शाम आखिर वो घड़ी आन ही पहुंची टेलीफोन पर, अब्बू ने खुद बात कर के कहा मैं आ रहा हूं एक घंटे के भीतर मेरे आने की खुशी में छोटी-मोटी मजलस जलसे की तैयारी करो! हबीब ने अपनी बीवी के जेवरात मांगे और चल पड़ा।

अब्बू आ ही पहुंचे घर की ओर

अब्बू मुहल्ले में सीना चौड़ा कर के चलते हुए खिड़कियों से झांकते हुए लोगों से कह रहे थे- ''अरे बुजदिलो बन्द खिड़कियों से क्यों झांकते हो, अपने मकानों के किवाड़ खोल कर पुरजोशी से मेरा इस्तकबाल करो। कहते ही अपने मकान में दाखिल हो गये। करीबी रिश्तेदार उनका इन्तज़ार कर रहे थे। अम्मा शायद इस उम्र में भी जा कर अपने मियां से लिपट जाती अगरचे रिश्तेदारों की हाजरी न होती तो। अब्बू की बहुएं नाक सिकोड़ कर बुरा मुंह बना रही थीं। अब्बू आते ही अपने पोतों से लिपट गये। एक करीबी रिश्तेदार ने पूछ ही लिया। ''आप को कोई तकलीफ तो नहीं दी उन लोगों ने।''

अब्बू अपनी शेखी बिखारते बोल ही पड़े ''अरे मैं न आने वाला था। बड़े ज़हीन और तहजीब के मालिक थे वो लोग इतनी खातिरदारी तामीज की कि पूछो ही मत। मेरे लिये तो अपने बेटों से बढ़ कर थे वो लोग। नाहक ही सरकार इनको बदनाम करने पर तुली है, मेरे साथ तो यह लड़के बड़ी तामीज से पेश आये। हल्की सी पूछताछ की कि आप के मुहल्ले में Crack Down कब-कब होता है। मुहल्ले में पुलिस का मुखबिर कौन-कौन है। मेरी खिदमत के लिये College Gradute, दो-दो लड़के मेरा हुक्म पाने के लिये हाथ बांधे खड़े रहते थे। मैं तो न आता अगर हबीब का दोस्त तारिक मेरी मिनन्तें नहीं करता और घर के हालात की जानकारी न देता।'' अब्बू किसी की सुने बगैर बोले जा रहा था।

याकूब चीख कर अब्बू पर टूट पड़ा। ''अब्बू आपको तीन लाख देकर छुड़ाया गया है। मकान गिरवी रखा है हमने। जितनी-जितनी आप की खातिरदारी बढ़ती गई उतना ही फिरौती का भाव भी चढ़ता गया था। अब आप घर में पड़े रहो तो बेहतर होगा। किसी से फिरौती या अगुबा होने का नाम भी नहीं लेना, कोई और मुश्किल न आन पड़े।''

० ० ०

संपर्क : 9-पंजतीर्थी, जम्मू तवी-180 001

प्रश्न

❑ बी० 'रमण'

मैं अपने कमरे को नई ही नज़र से देख रहा हूं। शायद आज तक मैंने अपने कमरे को कभी भी इस नज़र से न तो देखा है और न जीवन में इस प्रसंग की ओर आज तक मेरा ध्यान ही कभी गया है। आज तक कमरा मुझे अपनी रूचियों, अपने सोच-विचार और अपने रहन-सहन के लिए कितना ही उपयुक्त लगा था, परन्तु अब अकस्मात् ही यह क्या हो गया ? नहीं। ऐसा कुछ नहीं हुआ जो कहने योग्य हो और 'कुछ नहीं हुआ' यह भी तो कह नहीं सकता।

कमरे के सामने की खिड़कियों से कितनी रोशनी अन्दर आती है और मेरे कमरे के हवादार होने का कारण भी यही खिड़कियां रही हैं। परन्तु आज यह खिड़कियां इस कमरे की दीवार की कमज़ोर जगह नजर आ रही हैं जो किसी भी खूनी आंख की नज़र रोक नहीं सकतीं। कमरे के यह दरवाजे भी कैसी विवशता हैं मुझे यह आज अनुभव हो रहा है। मैं चारों ओर दृष्टि घुमाता हूं नहीं... कहीं भी ऐसी कोई जगह नहीं जहां आदमी आपत्ति के क्षणों में आश्रय ले सके।

मैं कमरे की दीवार पर टंगी हुई बड़ी तस्वीर के मुख की ओर देखता हूं। यहां की तस्वीरों से मेरा एक गहरा सम्बन्ध है और जब-जब मैं इन तस्वीरों के बिना स्वयं की कल्पना करता हूं तो मुझे उस भयानक स्वप्न में अपनी हुई दुर्दशा याद आती है। मैंने वह भयानक स्वप्न बहुत बार देखा है और हर बार उन विकराल क्षणों से गुजर कर टूटते-टूटते, जब मैं कमरे में इधर-उधर पड़ी हुई वस्तुओं के शान्त चेहरे देखता रहा हूं तो बदले हुए परिवेश को निश्चित मानकर स्वयं को सान्त्वना दी है- कि वह तो स्वप्न था, दु:स्वप्न, सत्य तो यह है कि यह मेरी वस्तुएं हैं, मेरे सानिध्य में वह मेरे बन्धु हैं, यह मेरा कमरा है, यह मेरा अहोभाग्य है- मेरा जीवन।''

मैं उस दु:स्वप्न में देखता रहा हूं कि किसी ने विद्युत के विप्लव की भांति मेरे शरीर का एक अंग काट दिया है। मैं उस दृश्य में उसको पहचानता हूं। स्वप्न की अपनी ही एक शैली होती है। यथार्थ में जो बात स्पष्ट हुए बिना रहती नहीं, स्वप्न में कभी वह भी अस्पष्ट होती है कभी बहुमुखी भी। जैसे मुझे लगता है कि जिसने क्रूरता से मेरा अंग काट दिया, वह मेरे साथ ही काम करने वाला है, मेरे साथ ही उठने बैठने वाला है। फिर लगता है जैसे वह मेरा भाई है- फिर लगता है जैसे एक समूह है, एक भीड़ सी है परन्तु उनके हाव-भाव, उनकी

क्रियाएं नियोजित हैं। दर्द की एक तीव्र लहर मेरी रीढ़ की हड्डी से गुज़र जाती है। फिर मेरे चेहरे की मांस-पेशियां तन जाती हैं और मैं अपने आक्रमणकारी को उसका अस्तित्व मिटाने के आवेश में देखता हूं। परन्तु वह मेरी दृष्टि से खो जाता है। मैं उसे ढूंढता हूं। अपने कार्यालय में, अपने लोगों में, अपने पास-पड़ोस में, अपने शहर में ढूंढता हूं। बहुत सारे लोगों पर मुझे संदेह होता है परन्तु जब-जब मैं याद करता हूं तो मुझे वह आकृति वह आदमी पूरी तरह से याद न ही आता। समूह का कोई भी चेहरा साफ-साफ याद नहीं आता। मैं संदेह की पुष्टि नहीं कर पाता हूं और मैं किसी को पहचान नहीं पाता हूं। मैं थक-हार कर एक जगह खड़ा हो जाता हूं। सामने बन्दूक ताने हुए वर्दी में रक्षक खड़े होते हैं। मैं उनके बीच से झांकता हूं। पीछे बहुत कुछ होता है- जले हुए घर, नंगे कमरे, खोन्चे वाले की तोड़ी मरोड़ी हुई साइकिल और उसके थाल के कुछ टुकड़े, टूटी हुई छतें, चारपाई के पाये, अधजली किताबें, अधनंगी लाशें। सड़क पर और भी बहुत सारा सामान बिखरा होता है। सड़क के किनारे एक कूड़े के ढेर पर मेरी नज़र जाती है। मेरा रोम-रोम सिहर उठता है। दर्द से मेरी रग-रग जैसे फटने लगती है। मेरे शरीर का अंग कूड़े के ढेर पर पड़ा होता है। मैं दर्द से कराहता हूं। मेरी कराह सुनते ही वहां पर खड़े अंगरक्षक को मेरी उपस्थिति का आभास होता है। वह चौकस होता है। क्षण भर में मुझ पर बन्दूक तानकर ट्रिगर दबाता है। मैं महसूस करता हूं मौत से पहले का एक क्षण। परन्तु जब मैं हड़बड़ाकर उठता हूं तो देखता हूं- एक शान्त वातावरण।

कुछ देर बाद बदले हुए परिवेश को महसूस करके सोचता हूं- ''मैंने जो कुछ देखा, जो कुछ झेला वह तो केवल एक दुःस्वप्न था- मैं मरा नहीं हूं।

उन क्षणों को तो आशावादी होकर मैं लांघता रहा हूं, परन्तु अब जब इन तस्वीरों को देखता हूं तो स्वपन्न में अपनी स्थिति का वह अनुभव मन के तन्तुओं में कम्पन पैदा करता है और लगता है मैं ऐसे क्षितिज पर टंगा हुआ हूं जहां दुःस्वप्न और यथार्थ मिलते हों।

तस्वीर का मुख देखते-देखते लगता है जैसे तस्वीर के रंगों में हलचल हुई हो। मुझे लगता है कि तस्वीर के शब्द ध्वनित होकर मुझे स्पष्ट कह रहे हों, ''कोई शै तो ऐसी भी है जो स्थानांतरण के नियम को अपना नहीं सकती, जिसका अस्तित्व केवल एक स्थान जानता है- एक-स्थिरता, जैसे एक पर्वत शृंखला, जैसे एक विशाल वृक्ष, जैसे एक महासागर, जैसे मैं।''

मैं तस्वीर से सम्बोधित होकर कहता हूं, ''मेरे दुःख का एक बहुत बड़ा कारण यह भी है कि मैं अपने अन्तस में जानता हूं कि जब मैं तुम्हें अपने साथ लेकर कहीं और बसने में अपनी पूरी ऊर्जा लगा दूंगा तो पाऊंगा कि मैं तुमको नहीं केवल तुम्हारी याद को ही अपने साथ बसा पाया हूं। यह कहते ही मेरे चेहरे पर उदासी की छाया गहरी होती जाती है। कुछ धंसने लगते हैं और रेखाएं गहरी होती जाती हैं। वहीं रेखाएं जो सीमाएं बांधती हैं, अनुभव

देती हैं, अधिकार देती हैं मेरे चेहरे पर यौवन काल में ही अपने हस्ताक्षरों से प्रौढ़ता और बुढ़ापे के मध्य के संघर्ष की छाप छोड़ देती हैं।''

मैं किताबों की ओर देखता हूं, दीवार पर टंगी घड़ी की ओर देखता हूँ। मेज़ पर पड़े काग़ज़ों की ओर देखता हूँ।- काग़ज़ क्षण भर में जिनका रूप बिगाड़ा जा सकता है जिनको राख किया जा सकता है... कागज़, जो मेरे पिछले दशकों, सम्भवत: पिछली सदियों, सम्भवत: पिछले जन्मों के क्रियात्मक कार्य के साक्षी हैं। मुझे लगता है कि मेरा रचनात्मक कार्य कागज़ी है। मुझे लगता है कि मेरे रक्त का रंग भी कागजी है। मैंने सुना है कि जिसके रक्त में लोहे का अधिक अनुपात हो उसका रक्त लाल होता है। इसी लोहे से तो तलवारें बनती हैं, बन्दूकें बनती हैं, ढालें बनती हैं।

अपनी कुर्सी की ओर देखता हूं जिस पर बैठकर मैं मेज़ पर झुका कार्य करता रहता हूं जीविका के लिए, जीने के लिए, जीवन के लिये। मुझे फिर भयानक विचार आता है, उस विध्वंसी शक्ति का कोई भी हाथ मेरे कमरे के भीतर आकर विश्रृंखलित कर सकता है इस कुर्सी को, इन रचना युक्त कागजों को, दीवार पर टंगी घड़ी को, तस्वीर को, कमरे की खिड़की को, द्वार को, दीवार को, या फिर... हां। या फिर मुझको। मुझे तोड़ दिया जा सकता है, मुझे काट दिया जा सकता है या मेरा पूर्ण अन्त किया जा सकता है। मैं स्वयं में फिर केन्द्रित हो जाता हूं। कमरे का फिर निरीक्षण करता हूं। ''मैं यहां पर पूरी तरह से असुरक्षित हूं।'' मेरे होठों से निकलता है और कानों में जैसे हजारों, करोड़ों मुखों की ध्वनि गूंजती है- ''असुरक्षित हूं।'' मुझे मालूम है 'असुरक्षित हूँ' की मेरी भावना मेरी निजी है और दु:खान्त यह है कि मैं स्वयं को असहाय अनुभव करके भी विशेष वर्ग से मिलकर 'असुरक्षित हूं' के बदले 'असुरक्षित' हैं। आवाज़ को इस तरह ऊंचा नहीं कर सकता कि विध्वंसक के हाथ जम जायें। कुछ ही देर पहले मैंने अपने शहर में एक अभियान देखा 'असुरक्षित हैं' अभियान। मैंने देखा रक्त से सना हुआ चेहरा नारा देता हुआ 'असुरक्षित हैं, असुरक्षित हैं' वह नारा अपना चेहरा नहीं धो पाया, रक्त से अपने हाथ रंगता रहा, अपनी सुरक्षा नहीं ढूंढ पाया, दूसरों की सुरक्षा पर बार करता रहा। 'नहीं', मैं ऐसा नहीं कर सकता परन्तु मैं अपने क़मरे में किसी अनहोनी से कांपने लगता हूं जो सम्भवत: घटित हो अथवा न हो। मैं दरवाजा खोलकर बाहिर निकलता हूं।

मुझे बाहिर जाता देखकर मेरा भाई पीछे से आवाज देता है, 'कहां जा रहे हो ?' ''कहीं नहीं'', मैं उत्तर देता हूं। भाई घर से बाहर तभी निकलता है जब अत्यन्त आवश्यक हो। वह शहर की सड़कों पर, चौकों में, वाहनों में हो रही दुर्घटनाओं से इतना व्यथित नहीं जितना भयभीत है इसलिए सुरक्षा के लिए अपने घर में ही प्राय: बैठा रहता है। एक दिन मैं उससे पूछता हूं, ''क्या तुम यहां सुरक्षित हो, जो तूफान पुलों को तोड़ रहा है, सड़कों को काट रहा है, वह किसी दिन इस घर के भीतर आ जाये तो....''। वह तुरन्त कह पड़ता है, ''उस समय यदि जीवित रहे तो जो और लोगों के साथ होगा, वही मेरे साथ होना मुझे स्वीकार होगा।''

मैं जानता हूं मेरे इस भाई ने जीवन में कोई ऐसा कार्य नहीं किया है जो उसके स्वार्थ, उसकी आकांक्षा, उसकी कामना से न जुड़कर इस घर से जुड़ा हो, इस मिट्टी से जुड़ा हो या इस शहर से जुड़ा हो। मैं गली को लांघते हुए दाएं-बाएं से निकलते लोगों को देखता जाता हूं। मैं भीतर-ही-भीतर अब भी सिकुड़ा हुआ रहता हूं क्योंकि मुझे लगता है कि इन लोगों में से बहुत से मुझे जानते होंगे और मेरी पहचान ही मेरी मृत्यु का कारण बनेगी।

फिर जब मैं बहुत दूर निकल जाता हूं, मैं राहत की सांस लेता हूं। मुझे लगता है कि मुझे यहां इस कोने में मेरे नाम से, मेरे चेहरे से कोई नहीं जानता और शायद मुझे कोई किसी भी विशेष वर्ग से यहां जोड़ नहीं सकता। मैं सड़कों पर चलता जाता हूं। जानता हूं सड़क, दुर्घटना घटित करने का निशाना है। फिर भी मैं चलता हूं- दिशा हीन, कार्य रहित, लक्ष्य च्युत भीड़ का वहीं चेहरा होता है परन्तु भाव-भंगिमा में कहीं कुछ अन्तर पड़ा हुआ लगता है। शहर मुझे एक ऐसा बीमार लगता है जो बीमारी को भुलाने के लिए बद-परहेज़ी कर रहा हो। मुझे स्वयं कुछ अधूरा सा लगता है। मैं जानता हूं मेरी पहचान मेरे स्थान से जुड़ी हुई है, मेरे कमरे की दीवार पर टंगी हुई मेरी तस्वीर से जुड़ी हुई है, टिक..... टिक..... टिक... करती हुई समय से अवगत कराने वाली घड़ी से जुड़ी हुई है, कमरे में मेरे पिछले कार्य से पड़ी हुई छाप से जुड़ी हुई है और मेरा अधूरापन उसी के अभाव का कारण है। मैं फिर भी चलता जाता हूं। नहीं, मैं चलता कहां हूँ मैं पांव चलाता हूं। हर कदम पर मुझे अपना शरीर भारी होता हुआ अनुभव होता है। मैं फिर भी स्वयं को घसीटता जाता हूं। मैं जहां रुकता हूं वहीं मेरे मन में प्रश्न ही प्रश्न कौंधते हैं- क्या मैं घर जा सकता हूं ?....... क्या मैं पड़ौस को लांघ सकता हूं ?... यदि घर को क्षत-विक्षत किया हो तो ....? अनिर्णय की स्थिति, पंगु-स्थिति से गुज़रता हुआ मैं व्यर्थ ही चलता जाता हूं। टांगें थक जाती हैं। रीढ़ की हड्डी में से दर्द की एक लहर सी गुज़र जाती है। मैं चलता जाता हूं ऐसे जैसे सड़क पर ही मुझे घर स्वयं मिल जायेगा किन्तु मेरा दुःखान्त यह है कि मुझे इसके बारे में कोई भ्रम नहीं, मैं जानता हूं कि कोई चमत्कार नहीं होगा, मुझे इस त्रासदी से कोई नहीं उबारेगा।'' ''यदि मैं ऐसे ही चलता रहा, पांव चलाता रहा तो एक दिन मेरा अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा,'' मैं स्वयं को चेतावनी देता हूं। परन्तु मैं फिर भी चलता जाता हूं। हर कदम भारी होता जाता है। आंखों के सामने मेरे विचारों से एक प्रश्न टकराता है- ''क्या मैं पलायनवादी हूं?'' मैं चलता जाता हूं जैसे मैं प्रश्न से भाग रहा हूं, जैसे मैं प्रश्न का उत्तर खोज रहा हूं, स्वप्न के उस चरित्र की भांति जो एक ही समय दो विपरीत दिशाओं में चलता है।

० ० ०

संपर्क : द्वारा/डॉ० सुषमा 'सरल' संस्कृत विभाग जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

अपने-अपने पिंजरे

❑ नरेश कुमार 'उदास'

प्लेटफार्म पर असंख्य लोगों की अन्तहीन भीड़ सिमट आई थी। इधर-उधर आते-जाते लोगों के झुण्ड। कोलाहल, हंसी-ठहाके गूंज रहे थे। अपने बूढ़े-मां-बाप को गाड़ी चढ़ाने आया था उमेश। ''पिताजी आप दोनों यहां बैठें। मैं अभी ट्रेन के समय का पता करता हूं। कब लगेगी प्लेटफार्म पर।'' इतना कहकर वह चला गया। बूढ़ा-बुढ़िया अपने सामान को सहेजे बैठे रहे।

उमेश ने लौटकर बताया, ''पिता जी ट्रेन घण्टा भर देर से आएगी।'' वह समीप बैठ गया था। चुप्पी सब को खल रही थी। बूढ़े ने सोचा यह उपयुक्त समय है, मन की बात कर ही डालें। उसने बात शुरू करते कहा, ''बेटा मेरे मन में हलचल मची है। यह बात सुनकर।

''क्या बात पिता जी।'' उमेश ने पूछा।

''कहते हैं बहू ने रिश्तेदारों के बीच यह कहा कि बूढ़ा-बुढ़िया पोते के लिए एक जोड़ी कपड़ा तक नहीं लाए। यह हमारा अपमान है। लोग न जाने क्या-क्या बातें बनाएंगे ?'' कहकर बूढ़ा उमेश को ताकने लगा।

''पिता जी लोगों की बातों में मत आएं। बात का बतंगड़ बना डालते हैं। किसी ने पूछा होगा, तो सहसा उसके मुंह से निकल गया। वह मात्र शगुन की धनराशि लाएं है। वस्त्र इत्यादि नहीं। इस बात का किसी ने विपरीत अर्थ ले लिया होगा।'' उमेश ने यह शब्द नम्रतापूर्वक कह डाले।

''बेटा बात तभी बनती है जब जुबान से निकले। यह अच्छा नहीं हुआ। बुढ़ापे में हमें बातें सुननी पड़ीं।'' बूढ़े के शब्दों में हताशा झलकने लगी।

''पिता जी'' आप भूल जाएं इसे। ऐसा कुछ नहीं है। उमेश ने अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाही। तो बूढ़ा झट बोल पड़ा।

''तुम घर का सब कुछ जानते हो। तुम से मेरा कुछ छिपा नहीं रहा। सभी बच्चों को पढ़ाया-लिखाया। सब बच्चों की शादियां की। इन सब को निपटाते, मैं बिल्कुल खाली हो गया हूं। अब तो कितने वर्षों से सेवानिवृत्त हूं। इस स्थिति में भी जो बन पड़ रहा है, करता रहा हूं और करता रहूंगा। किन्तु यह सब ऽऽ।'' लगा, उस का स्वर भर्राने लगा था।

''मैंने शगुन में रुपये इसलिए दिये थे कि वह शादी के अन्य खर्चों में काम आएं। उन्हीं रुपयों से मैं वस्त्रादि भी खरीद कर दे सकता था। क्या रुपये देकर मैंने बुरा किया।'' कहकर बूढ़े ने चुप्पी साध ली।

''पिता जी, लोगों के मुंह तो पकड़े नहीं जाते। उनकी जुबानें तो हम सिलने ऽऽ।'' बात बीच में ही अधूरी रह गई। क्योंकि धड़धड़ाती ट्रेन प्लेटफार्म पर आ लगी थी। उमेश ने सामान उठाया। पीछे-पीछे बूढ़ा-बुढ़िया बढ़ चले। ट्रेन में बिठाकर अन्तिम विदा लेते, चरणस्पर्श करते उमेश ने मात्र इतना कहा ''पिता जी पहुंचते ही पत्र डालना। चिंता लगी रहेगी।'' फिर वह उतर गया। चलती ट्रेन से बूढ़े ने उसे देखा। असंख्य हाथ विदाई की बेला में हिल रहे थे। ट्रेन ने धीरे-धीरे गति पकड़ ली थी। सब यात्री डिब्बों में बैठे अपना-अपना सामान सहेज रहे थे।

बूढ़े ने खिड़की से बाहर देखा। सूरज डूब चला था। लाल-लाल सूरज का डूबता गोला। वह भी तो डूबता सूरज है। जो थककर टूट रहा है। इस जीवन के उतार-चढ़ाव ने उसे तोड़ डाला। क्या-क्या नहीं देखा इस जीवन रूपी सफर में उसने। सहसा यूंही खोये-खोये वह अतीत की स्मृतियों में डूब गया।

उसकी पगार नाममात्र थी। बड़ी मुश्किल से वह परिवार की गाड़ी धकेल पाता। जैसे-तैसे करके उसने बच्चों को लिखाया-पढ़ाया। फिर क्रमशः उनकी शादियां भी कर दीं।

उसने सोचा था अब वह भारमुक्त है। किन्तु नहीं, जब तक मानव जीता है, सामाजिक जिम्मेदारियां सदैव उससे जुड़ी रहती हैं, जिन्हें उसे निभाना पड़ता है हमेशा। आज सब सुखी हैं अपने-अपने परिवारों में।

उमेश उसका बड़ा बेटा है। अब तो उमेश के दोनों बेटे भी कमाने लगे हैं। दिल्ली में तिमंजिला मकान और एक दुकान भी है। बेटा रोहित दुकानदार है। मोहित जो छोटा है नौकरी पेशे में हैं। मोहित की शादी थी इसलिए वह आए थे यहां। शादी में जब-जब बेटा-बहू पूछते। ''माताजी-पिताजी, हमारे क्या रीति रिवाज हैं।'' तो वह कहते, बेटा गांव में हम ऐसा करते हैं। अब शहर की तुम जानो। दोनों बातों में तभी हस्तक्षेप करते। जब बेटा-बहू कुछ पूछते। अन्यथा वह मूकदर्शक बने रहते। शहरी चकाचौंध, यह नकली चमक-दमक देखकर वह स्तब्ध थे।

दूसरे दिन जब नई दुल्हन घर आ गई तो सारा दहेज का सामान प्रर्दशन हेतु बरामदे-आंगन में रखा गया। उमेश की पत्नी सब दिखा रही थी। रिश्तेदार-सम्बन्धी उत्सुकता से सब निहारते रहे। तभी किसी ने पूछा था। कौन क्या-क्या लाया। किसके लिए क्या-क्या आया। बातों में बात निकलती है, किसी ने यूंही पूछ लिया। दादा-दादी गांव से पोते के लिए क्या-

क्या लाए। तो किसी ने सहजता से कह दिया। बेचारे बस चले आए। यह कोई कम बात है ? जितने मुंह उतनी बातें। किसी ने चुहलबाजी में कहा, ''एक जोड़ा कपड़ा तो ले आते।'' बस फिर क्या था। बात बिगड़ गई। बुढ़िया की मंझली बेटी वहीं थीं। झट वहां से चली आई। लगी बुढ़िया के कान भरने। बुढ़िया यह सुनकर तिलमिला उठी। इधर-उधर उसने नजरें दौड़ाईं। बूढ़ा कहीं न दिखा। सोचा छत पर बैठा सिगरेट फूंक रहा होगा ? उठकर छत पर चली गई। जाते ही पैर पटकते बोली, ''कान में रूई डालकर मत बैठा करो। कुछ सुन रहो हो ऽऽ या नहीं। लोग क्या-क्या बातें करते फिर रहे हैं। कुछ पल सांस लेने भर को रुकी, सभी कह रहे हैं, बूढ़ा-बूढ़िया एक कपड़ा तक नहीं लाए। एक जोड़ी कपड़ा तो ले आते। कौन रोज देना था। मुझे तो बड़ी शर्म आ रही है। तुम कब मानते थे। नकद रुपये दूंगा। चले आए थे। अपनी मूच्छों पर ताव देकर, पोते की शादी में। अब बोलो, चुप क्यों हो ? कहां खोये पड़े हो सपनों में। तुम्हारी बुद्धि सठिया गई है शायद ?'' बुढ़िया ने खूब लताड़ा।

''क्या बके जा रही हो। बिना ब्रेक लगे, चलती रहती है तुम्हारी जुबान। अपनी हांकोगी, या किसी की भी कुछ सुनोगी। कौन-सा भूचाल आया है। मैं भी तो जानूं?'' बूढ़े ने डांटा।

''तुम्हें तो कुछ पता ही नहीं जैसे। तुम्हारी तुम जानो। लेकिन मेरी मानो तो सुबह लौट पड़ो।'' बुढ़िया ने सलाह दे डाली।

''अच्छा ऽऽ अच्छा, देखता हूं। क्या हुआ है, किसने यह कहा सब ?'' कहकर बूढ़े ने सिगरेट सुलगाकर गहरा कश लिया। मन में सोचा-विचारा।

''बाबा खिड़की बंद कर दो।'' ठंड आ रही थी, बूढ़ा अतीत के सपनों से जागा। उसने ख्यालों को झटका। उसने ट्रेन के भीतर डिब्बे में सरसरी निगाह दौड़ाई। एक औरत का बच्चा स्तनपान कर रहा था। बच्चे को ठंड न लग जाए, इसलिए औरत ने खिड़की बंद करने के लिए कहा था। बूढ़े ने झट खिड़की बंद कर दी। बुढ़िया गठरी बनी पड़ी थी। क्या वह सो गई। या चुपचाप यूंही पड़ी है। अभी भी इसका गुस्सा उतरा नहीं। बात करो तो खाने को पड़ेगी। एक-दो जगह स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी, तो उसने पूछा था। चाय पीओगी किन्तु वह बोली तक नहीं। बैठे-बैठे उसे झपकी आने लगी।

उसने सोचा सिगरेट सुलगा लूं। लेकिन न जाने क्या सोच कर रह गया। इसी अवस्था में वह पुन: अतीत की स्मृतियों की गोद में समा गया। वह दिल्ली प्रवास के दौरान बेटे के पास जितने दिन रुके। उन्हें लगा, वह मात्र मेहमान सरीखे थे। नाश्ता-लंच-रात का भोजन करने ही, वह दोनों नीचे वाले कमरे में आते। अन्यथा वह ऊपर वाले कमरे में पड़े बतियाते रहते। या सांझ ढले वह छत पर जा बैठते। शादी के बाद सभी रिश्तेदार जा चुके थे। मात्र अपने परिवार के कुछ लोग रहे थे।

एक सांझ वह छत पर बैठे थे। उमेश और उसकी पत्नी वहां चाय लिये आ गए। चाय पीते हुए, उमेश ने बूढ़े से कहा, "पिताजी सभी-बहिनों को खुशी-खुशी विदा किया। पहुंच से ज्यादा दिया है मैंने।" वह शादी से जुड़ी अन्य बातें भी करता रहा। बूढ़ा मात्र हां में हां मिलाता रहा बस। अन्त में बूढ़े ने बस इतना ही कहा। "उमेश तुम सबसे बड़े हो घर में। तुम्हें सब से निभाना है। इतना ध्यान रखना।" इतना कहते-कहते उसने चाहा कि वह 'खाली हाथ आने वाला' प्रसंग भी छेड़े। किन्तु न जाने क्या सोचकर चुप्पी मार बैठा। तभी नीचे टेलीफोन की घण्टी घनघना उठी। तो उमेश और उसकी पत्नी दोनों नीचे चले गए। बस वह और बुढ़िया वहां रह गये थे।

"कब तक डेरा डाले रहोगे यहां पर ? बुढ़िया ने सहसा पूछा था। क्या वह स्वयं आकर कहेगा, पिताजी यह रही आप की गाड़ी की कल की टिकट। तभी का इन्तजार कर रहे हो।" वह तिलमिला उठी थी।

"उम्र भर यहां नहीं बैठूंगा। जानता हूं। लौटना तो है। लेकिन एकदम यूं जंचता नहीं। मौका पाकर बात करूंगा। सालों बाद आए हैं यहां। पांच-सात दिन यहां रह लेंगे तो आसमान नहीं टूटेगा। तुममें यही कमी है। सोचती कम हो, बोलती ज्यादा हो। बूढ़े ने समझाने का प्रयास भर किया था। यह क्या बेगाना है, बेंटा तो अपना ही है।"

"तुम्हारे होंगे यह अपने, मेरे नहीं।" अपने होते तो बहू क्यों कहती-फिरती। बूढ़ा-बूढ़िया कुछ नहीं लाये। खाली हाथ आए।

"तुम छोड़ोगी नहीं, यह किस्सा। लोग एक-एक की दस बनाते-फिरते हैं। किस का मुंह बंद करोगी ? तुम क्या सोचती हो। मुझे इस बात का दुख नहीं लगा। वक्त आने दो। उमेश से पूछूंगा।" बूढ़े ने बुढ़िया को सन्तुष्ट करने के भाव से कहा था।

"तुम पड़े रहो यहां। जब मन हो चले आना। मेरा तो मोहभंग हो चुका है। मेरी कल की टिकट कटा दो।" कहते-कहते बुढ़िया का स्वर रुंधने लगा था।

तभी नीचे से परिचित स्वर गूंजा था। "दादी-दादाजी नीचे आकर खाना खा ऽऽ लें।" दोनों उसी स्थिति में गुस्साए हुए मुंह-फुलाए चुपचाप उठे। खाना-खाकर दूरदर्शन पर समाचार सुनने के पश्चात् जब परिवार के अन्य सदस्य उठ गए तो बूढ़े ने उमेश से कहा, "बेटे अब हमें गांव लौटना पड़ेगा। कितने दिन हो गए। वहां खेत-पशु घर सब की चिंता सता रही है। हमें अब जाने दो।"

"अभी कुछ और दिन ठहरते। उमेश ने कहा तो बूढ़े ने तपाक् से उत्तर दिया, "नहीं ऽऽ नहीं बेटे। बस हमारा टिकट बनवा दो। परसों का।" बुढ़िया जो पास ही बैठी दोनों बाप-बेटे का वार्तालाप सुन रही थी। मन ही मन प्रसन्न हो उठी।

''जैसा आप चाहें। किन्तु मैं चाहता हूं, आप कुछ दिन रुककर जाते। क्या कोई कमी ऽऽ या ....

उमेश ने वाक्य अधूरा छोड़ कर। बाप की तरफ निहारा था।

''ऐसी कोई बात नहीं बेटे ? तुम जानते हो। सब घर की देखभाल।'' तभी रात के अन्धकार में चिंगारियां सी भड़की थीं। बूढ़ा चौंका। मानो सपने से जागा हो। पुरानी बातों का रेला थम कर रह गया। ट्रेन चीखती रात के सन्नाटे को तोड़ती चली जा रही थी। उसने भीतर निगाहें दौड़ाई। सब यात्री अलसाए पड़े थे। गाड़ी गंतव्य की ओर बढ़ रही थी। बूढ़ा हिचकोले खाता शून्य में न जाने क्या घूरता रहा। फिर जब स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो उसने पत्नी को हिलाया, ''चाय पीओगी क्या ?'' ''मेरा मन खराब हो रहा है। नहीं मैं नहीं लूंगी। कहते हुए उसने अपना मुंह लपेट लिया। बूढ़ा चाय पीता सोच रहा था। स्टेशन की चाय का स्वाद भी अजीब होता है। लगा बुढ़िया चौंकती उठ बैठी। पास ही सोई पड़ी औरत का बच्चा लगातार रो रहा था। वहीं औरत सोते-सोते अपने बच्चे को थपकियां देती सुलाने का प्रयत्न करने लगी। इस बीच कुछ सवारियां इस डिब्बे में चढ़ आईं। सर्वत्र भोर फैलने लगी।''

''सुनो ऽऽ जी, मैंने कहा सुनते हो।'' बुढ़िया ने पुकारा।

''हां कहो क्या बात है ? उसने हुंकारा भरा।''

''मैंने अभी-अभी बुरा सपना देखा। हमारी भैंस ब्याने वाली थी। भगवान खैर करे। बुढ़िया ने प्रार्थना की मुद्रा में हाथ जोड़े। मैं तुम्हें पहले ही कहती रही। मुझे यहीं पड़ा रहने दो। तुम कहां मानते हो। अपनी ही हांकते हो हमेशा। मकान की छत पर घास उग आई होगी। तुम तो सोये पड़े रहते हो। अपनी कोठड़ी में बेसुध। बाहर चाहे आग लगे, या कोई मरता रहे। तुम्हें इससे क्या लेना देना।'' बुढ़िया बुड़बुड़ाने लगी।

''जो होना होगा वह हमारे कहने भर से रुकेगा नहीं। क्यों तड़फती हो। शाम को पहुंच जाएंगे गांव। जी भरकर देख लेना सब कुछ।'' बुढ़िया को समझाते हुए उसने कहा था।

बूढ़े ने बाहर दृष्टि दौड़ाई, पक्षियों का शोर गूंज रहा था। सूरज निकलने लगा। खेत-तालाब-पेड़ भागती ट्रेन से पीछे छूटते जा रहे थे। चहचहाते पक्षियों को देखकर बूढ़े को अपने तोते (मिठू राजा) की याद हो आई। वह जख्मी पड़े उस नन्हें पक्षी को उठा लाया था। तब से उसे घर में पालता रहा। नया पिंजरा लाया। समय पर खाने को देता रहता। वह मिठू राजा को 'सीताराम' 'सीताराम' कहने को कहता। धीरे-धीरे अब स्वयं मिठू राजा सुबह-शाम 'सीताराम' की रट लगाता। जब भी वह सब्जी भरा थैला उठाए घर लौटता तो राजा टैं-टैं करके शोर मचाता। जब तक वह उसे खाने को न देता, वह फड़फड़ाता रहता। वह उसे पुचकारता ''बोल मिठूराजा 'सीताराम'। '' प्रत्युत्तर में राजा सीताराम की टेर लगाने लगता।

सांझ ढले वह दोनों गांव पहुंच गए। आते ही वह जान गए। गाय ने दूध देना छोड़ दिया था। फसल खेतों में पड़ी थी। इस बीच भैंस बीमार रही। जिस नाती के भरोसे वह घर छोड़ कर गए थे। उसने किसी भी चीज की तरफ ध्यान नहीं दिया। सब कुछ अस्त-व्यस्त था। बुढ़िया ने आते ही झाड़ू पकड़ लिया। बूढ़े ने उपलों की आग जलाई। अपना हुक्का साफ किया। फिर तमाखू डाला, ऊपर गर्म-गर्म उपलों की आग भर दी। हुक्का सुलगाकर। वह गुड़गुड़ाता मिट्ठूराजा के पास जा बैठा। मिट्ठू राजा पिंजरे में मचलने लगा। फिर वह सीताराम ऽऽ सीताराम की टेर लगाने लगा। घर का सारा सूनापन मिटने लगा।

फिर वही ठर्रेवाली ज़िन्दगी की शुरूआत। महीनों यूं ही निकल गए। इस बीच एक बार छोटा बेटा एक रात ठहरकर लौट गया। दिन यूंही कट रहे थे। सहसा बुढ़िया बीमार पड़ी। उसने खाट ही पकड़ ली। लगातार बुखार उसे तोड़ रहा था। बूढ़े ने सभी-बेटों को पत्र लिखे। कहा थोड़े दिन के लिए चले आओ यहां। वह अकेला कैसे सम्भाले यह सब। किन्तु कोई नहीं आया। सबने अपनी-अपनी मजबूरियां लिख डाली। बड़े बेटे ने इलाज के लिए कुछ रुपये भेज दिये। अब तो गांव वालों को अवसर मिल गया। जितने मुंह उतनी बातें। ''देखो ऽऽ बूढ़ा-बुढ़िया मर खप रहे हैं भला किसके लिए ? क्या फायदा ऐसी औलाद का? कोई आना नहीं चाहता गांव में इनके पास। सब शहर में मौज-मस्ती कर रहे हैं। मां-बाप जाएं भाड़ में। यूंही मर-खप जाएंगे एक दिन।'' बूढ़े ने यह बातें जब सुनी तो मन मसोस कर रह गया। बुढ़िया को जब उसने सुनाया तो उसने इतना ही कहा, ''अपना-अपना लिखा भोगना है सबने।'' इस बीमारी की अवस्था में उसकी समीप ब्याही बेटी हाल-चाल जानने चली आई। पांच-सात दिन रहकर वह लौट गई। इस तरह कब तक चलेगा। बुढ़िया ने खाट छोड़ दी। तपते बुखार में वह काम में जुट गई। सब उसे ही तो करना पड़ेगा। कौन बैठा है यहां जो उसका हाथ बंटाएगा। दवा-दारू भी छूट गई। एक दिन चूल्हा सुलगाते-फूंकते वह थक गई। गीली लकड़ियां सुलगने को न आ रही थीं। बुढ़िया बुरी तरह खांसने लगी।

''क्या जलाऊं, अपना सिर झौंक दूं चूल्हे में।'' बाहर बैठे हुक्का गुड़गुड़ाते हुए बूढ़े को उसने कहा।

''जाओ बाहर से सूखी लकड़ियां उठा लाओ।'' जहरीला धुआं सारी रसोई में भर आया था। वह झल्लाई बूढ़ा हुक्का गुड़गुड़ाता चला गया।

आजकल बूढ़ा स्वयं मुंह अंधेरे उठ जाता। आग सुलगाता चूल्हे में। कई बार बुढ़िया चूल्हे की राख में अंगारे दबा देती। सुबह अंगारे मिल जाते। झट आग सुलग उठती। कभी-कभार चाय भी बना लेता। वह महसूसने लगा, कि बुढ़िया आजकल जब देखो, खाने को पड़ती है। इसलिए वह अपना समय खेत पर, पशुओं को चराते हुए, या फिर कस्बे के दुकानदार के पास बिताता। बुढ़िया झुकी कमर लिए, गिरती-पड़ती अपना काम निपटाती रही।

एक दिन बूढ़ा खेतों से लौटा था। उसके कपड़े पसीने से तरबतर थे। सहसा उसकी नजर ननकू की औरत पर पड़ी। जो सामने से चली जा रही थी। झट बाहर निकलकर फट सा पड़ा।

''ननकू की बहू, ननकू ने खेत की मेंढ़ तोड़ दी है मेरी। यह उसने अच्छा नहीं किया। मेरे लड़के यहां नहीं रहते। इसका मतलब यह तो नहीं, कि मेरे खेतों को लोग हथियाने लगे। मैं जब तक जिंदा हूं। ऐसा कदापि नहीं होने दूंगा। ननकू ने क्या समझ रखा है। तू समझा देना उसे। ज़मीन का टुकड़ा चुराते शर्म नहीं आई उसे। बूढ़ा हांफने लगा था इतने कहते-कहते।''

''बस अब चुप रहना। चिल्लाना मत, वर्ना मुझ से बुरा कोई नहीं होगा? ननकू की औरत घायल शेरनी की भांति दहाड़ी थी। कब्र में पांव लटकाए बैठे हो। फिर भी झूठ बोलते हो। इसलिए नर्क भोग रहे हो। तड़प-तड़पकर मरोगे। कोई मुंह में पानी डालने वाला न होगा तुम्हारे पास, कफनफाड़-नासपिट्टा कहीं का ?'' मर कहीं जाकर। वह औरत गाली-गलौच पर उतर आई थी।

''यह हमारी बहू तुल्य है। तमीज है इसे बात करने की। सफेदवालों की कोई इज्जत नहीं। यह औरत जहर की पुड़िया है। यह शब्द बूढ़े ने बाहर निकलकर आये, तमाशा देख रहे एक पड़ोसी से कहे थे। फिर बूढ़ा अपमान से भरा, पैर पटकता भीतर चला गया।''

''बुढ़िया झटपट पानी का लोटा रख, खाना ले आई। पति को खाना खाते वह पूछ बैठी, ''क्यों लगाया ऐसी औरत से मुंह। पूरी छिनाल है। यह अच्छा नहीं हुआ।'' कहकर वह पंखा करने लगी। ''अच्छा होता जब ननकू आता, तुम उंससे बात करते। सब लोग बाहर निकल कर कैसे तमाशा देख रहे थे। कोई बोला तक नहीं।''

''वह तो तमाशा देखेंगे ही। वह हमारे शरीक हैं। शरीक जलती आग में घी डालते हैं।'' बूढ़ा बड़बड़ाया था।

''तुम थोड़ा सब्र कर लेते। आते ही आंगन में खड़े होकर उलझ पड़े। अब शोक मनाओ, अपनी नादनी का।'' बुढ़िया ने अपना फलसफा झाड़ा था। किन्तु उसके इन शब्दों ने जलती आग में घी डालने का कार्य किया। बूढ़े ने सोचा, बुढ़िया व्यंगबाण कस रही है उस पर। उसने थाली परे सरकाते हुए गुस्से में कहा, ''मेरे सामने से हट जाना। मैं आपे से बाहर हूं इस समय। कुछ हो हवा न जाए। मैंने कौन-सी गोली मॉर दी है उसे। एक तों खेत की मेंढ़ तोड़ी, ऊपर से अपनी गलती भी नहीं मानती। यह सरेआम गुण्डागर्दी है। मैं यह सब सह लूंगा क्या ?''

बूढ़े को अपना अकेलापन बेहद खल रहा था। काश! मेरे बेटे इस समय मेरे पास होते। इनकी क्या मजाल थी। सब समझने लगे हैं बेटे तो आएंगे नहीं। वहीं रस-बस गए। दबा लो,

इस बूढ़े-बुढ़िया को। स्वयं मर-खप जाएंगे ? बड़ी दयनीय स्थिति बन आई थी। लगा भीतर से हिल कर रह गया है वह। तभी उसका तोता मिट्ठू राजा टैं-टैं करता- चिल्लाने लगा। वह लगातार अपने पिंजरे में फड़फड़ा रहा था। उसे मिट्ठू का यह टैं-टैं करना असहनीय हो चला था। वह दूने क्रोध से भर उठा। उसे यूं लगा, मिट्ठू उसका मखौल उड़ा रहा हो। उसने डण्डा लिया। पिंजरे सहित मिट्ठू को ले गया खेतों में। पिंजरा खोलकर उसने कहा, ''उड़ जा, चल उड़ जा''। तोता पिंजरे से बाहर निकलकर पुनः पिंजरे के ऊपर जा बैठा। बूढ़ा बड़बड़ा रहा था। जब बेटे ही अपने दु:ख में अपने न बने। तो कौन बनेगा ? इस मिट्ठू को इसीलिए पाला था कि एकान्त को तोड़ेगा। इससे बतिया लिया करूंगा। लेकिन यह मेरा दुख क्या समझेगा ? उसने पुनः तोते को ललकारा ''उड़ जा, चला जा दूर कहीं।'' यह कहकर उसने डण्डा जमीन पर मारा। पक्षी ने पंखों को तौला-फड़फड़ाया। फिर उड़ गया। बूढ़ा पगलाया सा रह गया था। वह खाली पिंजरा लिए घर लौट आया। अच्छा हुआ राजा उड़ गया। कब तक पिंजरे में रहकर हमारा मन बहलाता। हमने तो इसी पिंजरे नुमा घर में अकेले मरना-सड़ना है। वह तो खुले गगन में उड़ाने भरेगा ? मनचाहा खाएगा ? जहां मन होगा उड़ेगा ? वह खाली पिंजरा -निहारता घर की चौखट पर जा बैठा। वह शोकाकुल था, मानो श्मशान से लौटा हो। कोई किसी का नहीं। सब सुख के साथी हैं। कोई अपना नहीं यहां। अब वह और बुढ़िया हैं। जीवन का कठोर सत्य मुंह बाये उसके सम्मुख था। निराशा-उदासी-अवसाद से भरा वह बैठा रहा। उठने तक की हिम्मत मानो शेष न हो। लगा आंखें गीली होने को हों। बुढ़िया चुपचाप उसे ताक रही थी।

तभी मिट्ठू राजा (तोता) घर की मुंडेर पर आ बैठा। लगा 'सीताराम, सीताराम' की टेर लगाने। बूढ़ा अवाक् उसे देखता रहा। राजा पुनः लौट आया। इस बात का उसे विश्वास नहीं हो रहा था। बूढ़े ने महसूसा उसके गले में कांटे फंस रहे थे। उसका गला रूंधने लगा। देखते ही देखते मिट्ठूराजा (तोता) उड़कर, अपने खुले पिंजरे के भीतर चला आया। वह बराबर सीताराम, सीताराम की टेर लगाने लगा।

° ° °

संपर्क : मकान नं० 21, सी. एस. आई. आर स्टाफ कालोनी भरमात,
पो. बनूरी, तह. पालमपुर-176061 (हि.प्र.)

महात्मा

❑ राजेश्वर सिंह 'राजू'

आज फिर वह जोर-जोर से हंस रहा था। आस-पास से गुजरने वाले बड़ी हैरानी से देखते, फिर यह सोचकर कि शायद वह पागल है, बावरा हो गया है, उसकी हरकतों का मजा सा लूटते आगे बढ़ जाते।'

उसे जानने वाले जानते हैं कि वह अक्सर गली की इस नुक्कड़ में आकर बेवजह हंसता रहता है। काफी देर तक हंसने के बाद वह रोने लगता है......। जोर-जोर से। लोग उसकी अटपटी हरकतों को पागलपन का दौरा मानते हैं, लेकिन उसी नुक्कड़ में पान की दुकान का मालिक दीनू उसे देखते ही परेशान हो उठता है। अपना पान का खोखा बन्द करके फौरन घर की तरफ दौड़ता है।

आज भी जब वह नुक्कड़ में आकर जोर-जोर से हंसने लगा तो दीनू ने अपना खोखा बन्द किया और घर की तरफ भागने लगा तो पास की ही किरयाने की दुकान वाला बृजमोहन हंसा था।

-''दीनू, तुम्हें तो इस युग में पैदा ही नहीं होना चाहिए था। एक पागल इंसान की हरकतें तुम्हें विचलित कर देती हैं। तू दुकान बन्द करके अपने घर, अपने परिवार की खबर लेने दौड़ता है। हालांकि, अबी कुछ देर पहले ही तो तू घर से आया था, फिर इतनी जल्दी कौन-सा पहाड़ टूट पड़ता है?''

-''नहीं बृज महोन, शायद तुमने कभी ध्यान नहीं दिया, जब भी यह हंसा और फिर रोया तो किसी न किसी घर से अर्थी उठी है।'' बृजमोहन हंसा।

-''इसका मतलब यह पागल किसी की मौत का बिगुल बजाने आता है। कहीं यमराज का यमदूत तो नहीं ?''

-''मैं तो इसे पिछले 10 सालों से जानता हूं, हर बार इसे जांचा-परखा है।''

-''वहम है... वहम। तू अंधविश्वासी कब से हो गया ?''

बृजमोहन दीनू का मज़ाक लेने लगा। लेकिन दीनू की आंखों में डर व्याप्त था। बृजमोहन की बातों को एक कान से सुन दूसरे से निकालता हुआ अपने घर की तरफ दौड़ा।

वह इन्सान, जिसके शरीर पर सिर्फ एक लम्बा फटा हुआ ओवरकोट था, बढ़ी हुई दाढ़ी, खिचड़ी बाल थे लगातार हंसा जा रहा था। गली से गुजरने वाला हर कोई बड़े अचरज से उसे देखता। बच्चे उसे तंग करने के लिए उस पर पत्थर फैंकते, छेड़ते और गली में गुम हो जाते।

लेकिन, उसे तो जैसे किसी की खबर ही न थी। हंसने का कोई काम हो और वह अपना फर्ज निभाए जा रहा था।

थोड़ी देर में ही दीनू वापिस लौट आया। अपना पान का खोखा खोल रहा था कि बृजमोहन ने फिर से मज़ाक किया-

- "दीनू। हो गया वहम दूर। घर में सभी ठीक-ठाक हैं ना ?"

- "हां, मेरे घरवाले तो सभी ठीक हैं। पर क्या पता किसी...."

- "तू भी पता नहीं किस जमाने में रहता है ? यह वैज्ञानिक युग है। लोग ऐसी बातें करने वालो को पागल कहते हैं पागल...."

- "ठीक है यार। मैं पागल ही सही। लेकिन जब मन में वहम हो जाए तो क्या किया जा सकता है।"

बृज़मोहन हंस पड़ा था।

वह पागल इंसान अब हंसने की जगह बेतहाशा रोने लगा था। पहले तो सिसकने लगा, फिर जोर-जोर से रोने लगा था। लोगों की समझ में यह नाटक उनकी समझ से परे था। फिर सोचते, पागल तो ऐसी बेतुकी हरकतें ही करते हैं।

पागल रोए जा रहा था। बच्चे तंग किये जा रहे थे। हंसी-मजाक का माहौल था। बृजमोहन के पास भी कोई ग्राहक नहीं था। दीनू से मजाक में बोला था-

"यार दीनू, अगर मैं इस पागल को ज्योतिषी कहूं तो तुम्हें बुरा तो नहीं लगेगा? लेकिन तुम्हें तो इस पर अच्छा खासा विश्वास है। इसकी हरकतों में छिपी भविष्यवाणी समझने लगे हो।"

दीनू उसकी बात पर कुछ पल गम्भीर बना रहा। बोला ले लो मज़ाक। लेकिन एक बात सत्य है.. और वह यह कि कुछ न कुछ होगा.. जरूर होगा..।

बृजमोहन दीनू की बात पर हंस दिया, जोर से हंस दिया। कुछ पल के लिये तो ऐसा लगा कि पागल इंसान की जगह शायद उसने ले ली थी। दीनू हक्का-बक्का उसे देख रहा ता। तभी बृजमोहन का छोटा बेटा दौड़ते हुए आया था। सांस फूल रही थी, घबराया हुआ बोला-

- ''पापा...पापा... जल्दी घर चलो। मम्मी....।''

बृजमोहन की हंसी को एकदम से ब्रेक लग गयी थी।

- ''कैसे हुआ ? क्या हुआ तेरी मम्मी को ?''

- ''रसोई में खाना बनाते हुए अचानक मम्मी गिर पड़ी... और तब से मम्मी बोल ही नहीं रही।''

बृजमोहन घबरा गया। फौरन शटर नीचे किया, दुकान बन्द की और घर की तरफ भागा। दीनू परेशान-सा उसे जाते देखता रहा। कुछ अनहोनी का एहसास तो उसे हो ही गया था। इस बार अनहोनी बृजमोहन से घटी।

कुछ ही देर में गली से उस नुक्कड़ की सभी दुकानें बन्द थीं। कारण स्पष्ट था- संस्कार। बृजमोहन की बीवी की दिल का दौरा पड़ने से अकाल मृत्यु हो गयी थी। बृजमोहन तो पगला गया।

शाम को जब अर्थी उठी तो हर कोई इस अचानक हुई मृत्यु पर शोक प्रकट कर रहा था। जवान मौत थी। उमर मुशिकल से 30 वर्ष। अन्तिम संस्कार में वह पागल इंसान भी शामिल था, सबसे आखिर में चल रहा था, नितांत अकेला। रोए जा रहा था, आंखें आंसूओं से लबालब थीं।

कुछ दिन बीते तो बृजमोहन ने दुकान खोल ली। लेकिन अब वह चुप और गम्भीर रहने लगा था। दीनू का मौजू लेने से भी परहेज करने लगा था।

उस दिन भी वह दुकान पर अकेला बैठा था, कोई ग्राहक नहीं था। तभी उसे पागल जाता दिखा। दौड़ते हुए गया और उस इंसान को दुकान पर ले आया। दीनू को बृजमोहन की हर हरकतों पर हैरानगी हुई थी। बृजमोहन तो पागल के पैरों में गिर पड़ा।

- ''महाराज, आप तो अंतर्रयामी हो। परलोक के ज्ञाता हो। मैं आपका अनादर करता रहा। शायद इसी लिये मुझे यह सजा मिली।''

दीनू परेशान था। बृजमोहन तो जैसे पागल का भक्त बन गया था। पागल को और भी पागलपन का दौरा पड़ गया। हैरान सा बृजमोहन की हरकतें देख रहा था। शायद उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

झटपट पागल के लिए कोल्ड-ड्रिंक और बिस्कुट आ गये। पागल की आदर-खातिर होने लगी। पागल को तो मानो स्र्वग मिल गया हो। दो, रोटी के लिए तड़पने वाले को भरपेटखाना मिल जाए तो वारे-न्यारे हो ही जाएं। उसकी सभी सहूलियतों का जिम्मा जैसे

बृजमोहन ने अपने सिर ले लिया हो। पागल की तो किस्मत ही बदल गयी थी। वह तो अब एक ज्ञानी बन गया था।

थोड़े ही दिनों में वह एक महात्मा बन गया। एक छोटा सा आश्रम बना दिया गया। महात्मा जी गद्दी पर बैठ गये। सुबह से लेकर रात तक सिर्फ सेवा।

जल्दी ही दूर-दूर तक उस पागल महात्मा की प्रसिद्धि हो गयी। लोग आशीर्वाद लेने आने लगे। बृजमोहन की दुकान बन्द। उसने बेच ही डाली। अपने घर से ही शुरू हुआ आश्रम अब बहुत बड़ा हो गया था। लाखों करोड़ों आ गये।

लेकिन गली की नुक्कड़ में पान का खोखा यथावत था। बृजमोहन की दुकान के खरीददार ने शराब की दुकान खोल ली थी। जहां कभी पागल खड़ा हंसता-रोता, वहां अब नौजवान, बुजुर्ग इकट्ठे हंसते, लड़ते झगड़ते... पागल की तरह। लेकिन उनका पागलपन कुछ पलों का ही होता। लड़खड़ाते हुए वहां से चले जाते।

दीनू उनके हंसने और रोने पर विचलित नहीं होता। दीनू की आस्था तो उस पागल पर थी। उसे पता था कि वह ही भविष्यवाणी कर सकता था। लेकिन दीनू को बृजमोहन पर बहुत गुस्सा था। उसी के कारण तो पागल का उस गली में आना ही बन्द हो गया था। आखिर उस पागल महात्मा के सफर की शुरूआत तो इसी नुक्कड़ से हुई थी। उसे यह नहीं भूलना चाहिए था।

फिर भी उसे संतोष था कि उस जैसे अंतर्यामी को पागल की जून से छुटकारा मिल गया था और उसे अपनी सही जगह मिल गयी थी। वह वाक़ई पूजने योग्य था।

कभी-कभी दीनू सोचता कि पागल से महात्मा तक के सफर में उसका भी तो योगदान था। एक वह ही तो उस पर विश्वास करता था। उसी ने तो उसके रोने और हंसने के पीछे छुपे रहस्य को ढूंढ निकाला था। बाकी सारे तो मौजू लेते।

आज सुबह से ही दीनू बहुत खुश था। कारण आज पागल महात्मा कई सालों के बाद गली की उस नुक्कड़ में पुनः पधार रहे थे। नुक्कड़ में एक बहुत बड़ी स्टेज बनाई गई। शहर भर में लगे पोस्टरों से ही पता चला था दीनू को। दीनू के पान के खोके के बाहर भी पोस्टर लगा गया था।

सुबह सवेरे ही दीनू नहा-धो कर तैयार हो गया। आज कई वर्षों बाद महात्मा जी के दर्शन करने को बेताब था। उसे उनके दर्शनों में अपना हक नजर आ रहा था। अपनी बीवी को भी तैयार होने को कह दीनू दुकान पर आ गया था।

लोगों की भीड़ जमा होने लगी। लाऊड स्पीकरों पर जोर-जोर से भगवान के भजन

चलने लगे। गलियों को झण्डियों से सजाया गया था। पूरी स्टेज को सजाया गया था, जिस पर महात्मा जी के विभिन्न कोणों से लिये चित्र भी शामिल थे।

सही मौके पर महात्मा जी आए। बृजमोहन उनके साथ ही था। भीड़ में से बड़ी मुश्किल से स्टेज पर पहुंचे। दीनू को लगा कि महात्मा जी की काया ही पलट गयी हो। बड़ी मुश्किल से उनके दर्शन करने के लिये भीड़ से आगे निकलनें की कोशिश कर रहा था।

महात्मा जी लौट गये। इस बार वह मौन रहे थे। ना हंसे ना रोये। सपाट-चेहरा था। दीनू निश्चिन्त होकर पान की दुकान खोल कर बैठा ही था कि उस का बेटा दौड़ा दौड़ा आया था। वह घबराया हुआ था। उखड़ी सांसें नियन्त्रित करते हुए यही बोल सका-

- ''पापा, मम्मी.....।''

शाम को एक और अर्थी उठी थी। लेकिन इस बार कोई भविष्यवाणी नहीं ना ही भविष्यवाणी करने वाला वह पागल अंतिम संस्कार में शामिल हुआ था। वह तो महात्मा बन चुका था।

○ ○ ○

संपर्क : *माया कुटीर, तोप शेरखानियां, पलौड़ा, जम्मू।*

हवेली

❑ संतोष सांगड़ा

आज उसकी पुस्तकों का विमोचन समारोह था, ''हवेली'', और 'सलाखें' यही नाम था। उसकी जवान बेटी - जानी मानी पत्रकार ''पूजा उपाध्याय'' उसके साथ आई थी। और आज पूजा बहुत खुश थी कि उसकी मां की साधना कई बरसों की मेहनत से आज सफल हुई है। ''औरतों की जिन्दगी जो सलाखों के पीछे'' उसका यह लेख कई सालों से एक मासिक पत्रिका में छपता आ रहा था और आज वह अपने प्रशंसकों में घिरी उनसे सम्बोधित थी- एक प्रशंसक ने पूछ ही लिया, ''हवेली की नायिका इस धरती की नहीं लगती, भारतीय नारी की छवि नहीं दिखती उसमें। त्याग और बलिदान जैसी...'' मानवी ने उसकी बात को काटते हुए कहा- मेरी नायिका दकियानूसी समाज के साथ बगावत करती है और हवेली की सलाखों को तोड़ने का साहस करती है। सोने चांदी के गहनों की पुरुष प्रधान समाज द्वारा पहनाई गई बेड़ियां खोलने का प्रयास करती है इसलिए ? क्यों नारी एक की भोग्या बन कर दूसरे व्यक्ति के लिए जूठन हो जाती है? नीचे गिर जाती है? एक ऐसी ऊंचाई भी तो हो सकती है...उसकी बेटी पूजा ने मां का कन्धा दबा दिया जैसे कि कह रही हो, मां मैं हूँ ना, तुम्हारी गवाह। मानवी बोलती गई- जहां शरीर का अधिक सम्बन्ध बहुत नगण्य हो कर दिखे, जहां नारी के शील को लेकर काठ की हांडी की तरह एक बार शेष हो जाने की धारणायें प्रचलित हों उस समाज में ये साहित्यिक प्रयोग कम खतरनाक है ? लेकिन नारी पारिवारिक सामाजिक पक्ष के प्रति पूर्ण सजग है।

वह देवी और दानवी के दो छोरों के बीच टकराती पहेली नहीं- हाड़ मांस की ''मानवी'' भी है-

दर्शकों की तालियों की गूंज के साथ मानवी पूजा की ओर देख कर मुस्कराई- ओर उसी मुस्कान से वह अपने अतीत में खो गई। हस्पताल के लेबर रूम में काफी चहल-पहल थी उसी चहल के बीच दीवार से सटे एक बेंच पर एक बूढ़ी औरत साधारण कपड़ों में, हाथ में पोटली लेकर दोनों पांव को बेंच पर रख कर बूढ़े और कमजोर शरीर को सम्भालने की कोशिश कर रही थी। उसके सामने ही एक नौजवान तेज-तेज कदमों से चलता हुआ कुछ निश्चित दूरी तक जा कर वापिस लौट रहा था। उसके कदमों से उसकी बेचैनी के भाव प्रकट हो रहे थे। तभी उसकी नज़र दीवार पर लगे एक पोस्टर पर चली गई जहां एक सुन्दर-सी नर्स अपने होंठों पर लम्बी सी अंगुली रख कर चुप रहने का संकेत कर रही थी। वह उसके चेहरे के भाव पढ़ने की कोशिश कर रही थी। मानो नर्स को चुप नहीं देखना चाहता था वह, उसके मुंह से कुछ न कुछ सुनना चाहता था, ''सुनीए'' इस आवाज

से उसकी चेतना लौटी, लेकिन पीछे मुड़ते ही उसके सामने एक मोटी से नर्स खड़ी थी, ''सुनीए'' उसने एक बार फिर पुकारा 'लड़की' हुई है, ''छनाक'' और फर्श पर सिक्के बिखर गये शायद बेंच पर बैठी बुढ़िया के कमजोर हाथ उस पोटली के भार को सम्भाल नहीं पाये थे और नौजवान की आंखों से आंसू। वह बूढ़ी कमजोर औरत तब तक बैंच से उतर कर गिरे हुए सिक्कों को बोटरने लगी। कितने अरमान से उसने रामदीन से कह कर सौ रुपये का नोट तुड़वाया था कि पोता होने पर पोते के सिर से बार कर गरीबों में बांट देगी। अरे पहाड़ वाले हनुमान के मन्दिर में मोती चूर लड्डूओं का थाल चढ़ाऊंगी। खैर! जो भगवान को मंजूर।

वह अपने बेटे के पास आई और उसे समझाने लगी। चुप कर बेटा भगवान की यही इच्छा थी। चलो देवी आई घर में। अरे... अरे अभी अभी डाक्टर साहिब राउण्ड पर आ रहे हैं और तुम हो कि यहां आंसू बहा रहे हो। चलो चलो पीछे हटो। तब दोनों के क़दम धीरे-धीरे पीछे हटते गये और नज़र से ओझल हो गये।

घुटनों के बल चलने वाली देवी की उपाधि वाली गोल मटोल बच्ची धीरे-धीरे सब का मन मोहने लगी। सबकी प्रिय बन गई। उसके पिता तहसीलदार बन गये। पापा की ट्रांसफर रामनगर हो गई। धीरे-धीरे वह महत्वकांक्षी लड़की गांव की चहेती बन गई। उसके बाद दो भाई होने पर उसकी दादी ने उसकी पीठ पर दो बार नारियल रख कर हल्की सी टकोर हथोड़ी की की पर उसने सी तक नहीं किया।

घुटनों से ऊंची फ्राक पहिन कर और अपने भारी भरकम घुंघराले बालों को बड़े करीने से बांध कर इधर-उधर फुदकती कभी सामने वाले पहाड़ के टीले पर कभी नीचे बहते नाले के पत्थरों पर हिरणी की तरह छलांगें लगाती दौड़ती जाती थी। पता नहीं कितना भागती। क्यों भागती कहां तक जाना चाहती नहीं मालूम... हां मालूम था तो सिर्फ भागना। गांव को शहरों की सड़कों से जोड़ती थी। गांव की कच्ची टूटी फूटी पगडंडी जो अक्सर बरसात में दलदल जैसी बन जाती थी। इसीलिए लोग घोड़ों खच्चरों से ही नग्गर कस्बा तक आया जाया करते थे। घुड़सवारी उसका प्यारा सा शौक बन गया।

जब वह छोटी सी बच्ची थी तो अक्सर लकड़ी की चौकी पर बैठ कर ही एक कमरे से दूसरे कमरे तक का सफर तय करती थी। उस चौकी को घोआ (घोड़ा) कह कर पुकारती थी चल... चल... चल मेआ घोआ)। पुराने मकानों में अक्सर दहलीज हुआ करती थी। तो उसका चौकी नुमां घोआ रुक जाता तो इतना शोर करती, रोती। तभी काका रामदीन चौकी समेत उसे उठाकर दहलीज पार करवाता। अगर गलती से कोई उसे डांटता तो घंटों चुप ही नहीं करती। हार कर सब कहते चुप हो जा अम्मा हमें माफ कर..... हमने तुम्हें नहीं डांटा मीनू को डांटा है। तब वह भोली हंस देती और कहती आंसू जो वह रहे हैं वह पोछों। उसकी इस बात से काका रामदीन उससे बहुत प्यार करता। थोड़ी बड़ी हुई तो घुड़सवारी करना उसका सबसे प्यारा शौक बन गया। उसके पापा के पास

3-4 घोड़े थे। सफेद रंग का उसका घोड़ा था जिसे वह चम्बू-चम्बू कह कर पुकारती थी। वह अक्सर उसी पर घूमने जाती थी। काका रामदीन उसे घुमाने ले जाता तो वह लगाम छुड़ा कर बहुत आगे निकल जाती। अब तो अच्छी घुड़सवार बन गई थी। जैसे-जैसे घोड़ा दौड़ता जाता वह आसमान की ऊंचाइयों में उड़ती जाती। बहुत तेजी से कच्चे पक्के रास्तों पर अपने घोड़े को दौड़ाती हुई ले जाती और उस से भी तेज दौड़ते उसके अरमान उसके विचार जिनमें बहुत कुछ करने की तमन्ना होती थी। उसकी कोई सखी सहेली नहीं थी। सूर्य की किरणें ठंडी हवायें काले बादल जिन्हें देखकर वह मोर की तरह नाचती।

जैसे-जैसे उसकी फ्राक का स्थान सलवार कमीज ने लिया उसके साथ ही लग पड़ी मां की पाबन्दियां अब न अकेले घुड़सवारी करना न बहते झरने में नंगे नहाना। उस मासूम को जीवन की सच्चाइयों का पता ही नहीं चलता। मां के मना करने पर वह सोचती आखिर क्यों आयने के सामने खड़े हो कर अपने आप को निहारती तो उसे ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं देता। हां अगर कुछ दिखाई देता तो बस अपनी बड़ी-बड़ी काली आंखें और घुंघराले काले बाल और उन पर बन्धे दो रीवन- बस और कुछ भी नजर नहीं आता। तो फिर मनाही क्यों ? स्कूल में पढ़ना शुरू किया। आठवीं कक्षा गांव में पास करके शहर में चाचा के पास रखा। मासूम स्वप्न लोक में विचरने वाली लड़की बड़े नगरों का जीवन उसने नहीं देखा था। उसे यहां चांद सूरज पानी के झरने खुला आकाश नहीं दीखता। चांद को देखने के लिए उसे छत्त पर आना पड़ता। धीरे-धीरे उसने पढ़ाई में मन लगाना शुरू किया तो दसवीं में अव्वल दर्जे में पास हुई। स्वप्नलोक में बिचरने वाली लड़की प्राय: स्वप्न में किसी के साथ आंख मिचौली खेलती कोई पानी का किनारा होता- पास हरेभरे खेत पीले सरसों के फूलों से आंख मिचौली खेलती। वह सोचती काश कोई सरसों के फूलों से निकल कर उसे पकड़ ले कभी कभी खाली समय में बैठी-बैठी वह उस राजकुमार का चेहरा अपने कागज पर उतारती पर उसकी शक्ल किसी भी परिचित या रिश्तेदार से नहीं मिलती। फिर उस काल्पनिक राजकुमार को मन में रखे कुछ न कुछ तुकबन्दी करती रहती। उल्टी सीधी ड्राईंग बनाती और खाके बनाती। चाहे झरना हो खेत हो पहाड़ पर कुछ न कुछ लिखती रहती। फिर बहुत सी पंक्तियां कविता में बदलती गईं। एक दिन फीस जमा करवाने चाची गई तो अध्यापक ने बहुत प्रशंसा की कि लड़की बड़ी होनहार है। और उसकी कविता भी दिखाई। चाची फीस जमा कराके घर आई तो दो चार थप्पड़ जड़ दिये उसे। चाची ने सोचा दसवीं पास करके शादी कर ही देंगे मां-बाप। पर जब पता चला कि आगे भी पढ़ाई जारी रखेगी तो चाची ने बताया की लड़की के लक्षण ठीक नहीं है मां-बाप के पास भेज दो। रोज चाची के तानों की बरसात में वह काल्पनिक उस अजनबी को भूल गई। और वह अजनबी स्वप्न में ही खो गया। चाचा ने बड़े भाई को बुला कर आने वाले खतरे से अगाह कर दिया। लेकिन बाप ने एक नहीं सुनी और उसे होस्टल में रख दिया। पढ़ाई जारी रही। घर की घुटन से दूर उसे कई तरह के अनुभव हुए। हम उम्र लड़कियों की नित्य नई-नई कथायें किस्से सुनने को मिलते। पर उसने भी सुनने तक

ही सीमित रखे। लड़कों के पैगाम वह समझती लेकिन खुश्क सपनों में रंग भरने के लिए अपने मन में किसी शहजादे के बजूद को जन्म नहीं दिया। होस्टल की लड़कियां, जिनके जिस्म स्वदेशी लेकिन उनका ओड़ना बिछौना अंग्रेज़ी फिरंगी सभ्यता की गहरी छाप लिए था। वह जंगली हिरणी की भान्ति पिंजरे में घुटी-घुटी रहती। इस सब माहौल ने उसे संयमी और विनम्र बना दिया। वह गहरा कुआं बन गई थी सिर्फ झांकने के लिए। जिसका अंदाजा लगाना असम्भव था। इन गहराइयों का अन्दाजा उसकी बड़ी-बड़ी विवेकी साफ सुथरी आंखों से मिलता था। उसने अपनी योग्यता का सिक्का सबके दिलों में बैठाया है। सादगी और सुन्दरता दोनों ने उसे निखार दिया।

फिर भाग्य ने उसके साथ मज़ाक किया। मां बीमार हो गई। मां ने मरने से पहले लड़की के हाथ पीले करने को कहा। खैर चट-मंगनी पट ब्याह। चौधरी खानदान की बड़ी हवेली में रिश्ता हुआ। सभी खुश थे बिना दहेज के शादी हो रही है सिर्फ उसके पापा खुश नहीं थे। वे अपनी लड़की को बहुत बड़ा बनाना चाहते थे सो भाग्य के ऊपर सारा श्रेय रख कर वो निश्चिन्त हो गये। इस विवाह ने न केवल उसकी पढ़ाई को हानि पहुंचाई बल्कि उसकी सारी उड़ानें सारे सपने एक ही झटके में तोड़ दिये। शहर की पढ़ी लिखी लड़की को ससुराल ऐसा मिला की सुन्दर सी ज़िन्दगी कैद सी हो गई- सुन्दर कैद ? इतने बड़े घर की बच्ची जिसकी अधिकांश इच्छाएं बिन कहे पूरी हो जाती थीं। इतनी बड़ी हवेली में अन्दर की औरतें सोने-चांदी के गहनों से लदी गाय भैंसों की तरह जंजीरों में जकड़ी कितनी खोखली। हवेली की दीवारों की तरह उनकी जिन्दगी में भी दीमक लग चुकी थी। घर के मुखिया के कहने पर घर के काम-काज यहां तक कि सोने का समय भी वही तय करता। धीरे-धीरे वो काल्पनिक स्वप्न लोक में बिचरने वाली लड़की एकाएक बहुत सयानी हो गई। कभी-कभी वह अपने आप को भाग्यशाली तो कभी अपना दुर्भाग्य समझती- उसने देखा कैसा पुरुष प्रधान समाज है इस हवेली का। लड़की होने पर मातम और लड़का न होने पर दूसरी शादी करना। बारात के लिए लाहौर से नाचने वाली आती मुजरा होता... और वो औरतें उसे परछाईयां सी दीखतीं। सब की सब बुत बनी... सुन्दर ताई जिसे ताऊ ने मार-मार दूसरी शादी के लिए हां करवाई और चाची ने गंड़ीला खाकर जान गंवाई- ओर वो ''मानवी'' मूक दर्शक की भांति उन्हें देखती। उनका दर्द ; उनकी मुहब्बत उसके मन में उभरती और वह रो पड़ती। पर कोई उसकी आवाज नहीं सुनता... उसे लगता इस कैद खाने में सलाखों के पीछे उन औरतों की कतार में वो भी खड़ी हो गई। उसके पति रणजीत सिंह हवेली के बाकी सदस्यों से थोड़े हटकर थे। वे न ज्यादा बोलते थे ना हंसते थे। उनके दो ही शौक थे। एक सिगरेट और ताश कोई भी महफिल उसके बिना नहीं जम सकती थी। ऐसा बेजोड़ खिलाड़ी ढूंढे नहीं मिल सकता था। दोनों के स्वभाव भी एक सिक्के के दो पहलू थे। दोनों के अदब कायदों में मेल नहीं था। जब वो ससुराल आई लोगों को रणजीत के सौभाग्य पर ईर्ष्या हुई। मानवी चेहरे से ही नहीं बुद्धि का कोठा भी ठसाठस भरा था। हवेली की दूसरी औरतों से हटकर थी। इस बात

को रणजीत अच्छी तरह जानता था कि भोली-भाली अनपढ़ पत्नी को जैसे तर्जनी पर नचा सकता है पर इसे नहीं नचा पायेगा। शहर की पढ़ी लिखी लड़की है ज़रा भी ढील दी तो यह बिलक्षण युवती उसे झट अपने अगूंठे तले दबा लेगी। जीवन भर आकण्ठ प्रेम में डूबे दम्पत्ति कभी-कभी वैवाहिक जीवन के सच्चे सुख को नहीं जान सकते और एक ना एक दिन उनका बनावटी अभिनय सामने आ ही जाता है। जीवन भर गुटरगूं करना भला कोई जीवन है। वो ताश की महफिल सजाये रखता तो मानवी किताब खोल कर बैठ जाती। कभी-कभी वो सोचती कि पुलिस आये दिन छापा मारती रहती है। पर बड़ी बड़ी हवेलियों के अंदर क्या कुछ नहीं होता। पर पुलिस अधिकारियों की नाक के नीचे जुआ चलता है। मेरा बस चले तो सरे बाजार जूते लगवाऊं जिस हवेली के चौधरियों के लड़के पर उसके घर वाले रीझे थे वही धीरे-धीरे अभिशाप बन गया। और सब से ज्यादा उसकी बुद्धि ही उसकी शत्रु बन गई। शोषण प्रवृत्ति अन्याय अत्याचार को सहन नहीं कर सकी न अपने प्रति न लोगों के प्रति। याद है बीस साल की लड़की जिसके मां-बाप कर्जे के कारण ज़मीन न छुड़ा सके 45 साल के बूढ़े के साथ ब्याह दी... लाल जोड़े में सौत को देखकर चाची ने गंडीला खा कर जान गंवा दी। और मानवी इस अत्याचार के खिलाफ बोलने का साहस कर बैठी, पर चौधरियों ने जिसमें उसका पति रणजीत भी शामिल था- चाची का दाह संस्कार चुपके से कर आये- गांव में किसी की हिम्मत नहीं थी बोलने की पर मानवी चुप नहीं रही चीख-चीख के सबको बतलाये- उस दिन पहली बार रणजीत ने उस पर हाथ उठाया। पर मानवी चुप कहां रही। चाची की मृत्यु की भनक जब दूसरे (राजपूतों को लगी) उनसे पुरानी दुश्मनी तो थी ही खबर गांव में आग की तरह फैल गई। मानवी ने अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली। पंचायत बैठी, पर किसी तरह केस को दफना दिया गया, अब तो बात-बात पर मानवी को ताने मीने सुनने को मिलते। हवेली की किसी भी औरत को उसके पास बैठने नहीं देते थे। वह अकेली... ऊब गई। उसका बाहर निकलना भी बंद था। उसकी किताबें तक बाहर फिंकवा दी। वह अकेली बैठी-बैठी रोती रहती... उन्हीं दिनों मानवी के पिता को हार्ट अटैक का पहला दौरा पड़ा। मजबूरी में उसे माइके में जाने की इजाज़त मिली... उसे भी कुछ राहत मिली। अपने पिता की तामीरदारी में वह सब कुछ भूल गई। उसके पिता भी उसके दुख को समझते थे पर मूक दर्शक की भांति चुप रहते। पिता की हालत में थोड़ा सुधार आया।

कैनेडा से एक दिन उसकी बुआ आ गई। थोड़ा भार हल्का हुआ। बुआ रात को हस्पताल चली जाती। उस दिन मानवी पिता को देखकर शाम को लौटी तो सोचा आज रात सोऊंगी। गर्मियों के दिन थे लाइट नहीं थी। वह छत पर टहलने लगी। ठंडी हवा चली कि तख्तपोश पर लेटे-लेटे ना जाने कब उसकी आंख लग गई। किसी आहट से उसकी नींद खुली कि दौड़ी नीचे आई तो देखा चोर लम्बा सा छुरा लेकर उसकी ओर बढ़ा। उसकी चेन-चूड़ियां बालीयां सब उसने उतरवा लीं। मानवी ने हाथापाई भी की लेकिन चोर ने सब कुछ छीन लिया। चोटें लगीं जगह-जगह खरोचें भी आई। ब्लाऊज फट गया..

ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाई। लोग आये मानवी को बेहोश देखकर कर पानी के छींटे मारे। वह घबराहट में उठी और जोर-जोर से रोने लगी कि मेरा सब कुछ चला गया। फटा ब्लाउज... खरोचें। लोगों ने क्या-क्या सोचा पर मानवी अपने होशोहवास में नहीं थी पेटीकोट ब्लाऊज में ही ऊपर चली गई थी। फटाफट साड़ी खींची पहनी और भीड़ को तितर-बितर कर दिया। मानवी जोर-जोर से रोने लगी। सभी गहने ससुराल वालों के थे। सब कुछ जान कर भी पति महोदय नहीं आये। मानवी को बहुत दुख हुआ कि पिता को देखने तक नहीं आये। पिता जी की हालत में सुधार आया। छोटी ननद की शादी आ गई। मानवी ससुराल गई। चोरी की खबर तो सब को लग चुकी थी। किसी ने भी उससे कुछ नहीं कहा किसी ने पिता जी की बीमारी के लिए नहीं पूछा। दबी-दबी आवाज में कानाफूंसी होती ही रहती थी। औरतों में तो चूरन चटनी लगा कर बातें होतीं। दु:ख इस बात का कि रणजीत खामोश थे। शादी की गहमा-गहमी में दिन बीत गये।

एक दिन रात को लेटे-लेटे मानवी ने कहा... आपको जरा भी दुख नहीं... अगर चोर मुझे जान से मार देता तो? मेरा तो सब कुछ चला गया पर जान बच गई। पति को खामोश देख उसने उसे झंझोड़ा- कैसे हैं आप इतनी बड़ी बात हो गई, और आप हैं कि जैसे कुछ हुआ नहीं... रणजीत लगातार टकटकी लगाये देखते हुए उसने फौरन उससे पूछ लिया- मानवी भगवान को साक्षी रखकर कहो उसने तुम्हें छुआ तो नहीं? सुनते ही 'मानवी' जैसे आसमान से गिरी। ऐसी नीच हरकत। आखिर तुम्हारे अंदर पल रहे विषधर ने डस ही लिया न। मानवी ने कुछ नहीं कहा केवल शून्य में ताकती रही। वो सोच भी नहीं सकती थी कि बहुत कम बोलने वाला उसका पति विषधर आखिर डस ही लेगा। (मेरा सब कुछ छिन गया) कितना महंगा पड़ा। उसने तो कहा था कि साड़ीयां गहने सब कुछ ले गया उसे क्या मालूम औरत का सब कुछ उसकी इज्जत होती है। उसका शील होता है। कुछ दिन उलझन में घिरी। विधाता ने एक और वरदान दिया। वह गर्भवती हो गई। सोचा सब ठीक हो जायेगा। वह सब कुछ भूल गई कि अब नन्हे शिशु की किलकारियां हवेली में गूंजेंगी। लेकिन उस विषधर को पता लगा तो खूंखार शेर की भांति दहाड़ा कि हवेली की दीवारें कांप उठी ''चोर की संतान'' इस घर में नहीं पलेगी। चौधरियों की हवेली है कोई अनाथालय नहीं- मानवी ने कई दिन कुछ नहीं खाया, रात रात भर रोती रही.. और फिर एक दिन उसका अन्तिम सहारा भी दुनिया से चल बसा। मानवी उस हवेली से हमेशा के लिए निकल गई। पिता का अंतिम संस्कार करके कुछ ही दिनों के बाद अपने सगे सम्बधियों, मुहल्ले शहर को छोड़ कर अपनी बचपन की सहेली के पास इलाहाबाद चली गई। गुमनाम अनजान शहर में नये नाम के साथ गुम हो गई। इलाहाबाद में उसकी सहेली की अपनी प्रैस थी। मानवी उसी में काम करने लगी। वहां विनोद उपाध्याय से उसकी भेंट हुई। जिसने उसके अहसास को जगाया। उसके मन के आकाश पर चढ़ा हीन भावना का गुबार धो कर उसे आत्मविश्वास का नया निखार भर दिया कि वह अब रोयेगी नहीं, किसी छलावे के पीछे नहीं भागेगी, वह जियेगी, एक

शांत भरपूर जीवन अपने लेखन के सहारे, अपनी जीविका के सहारे अपने बच्चे के लिये।

कुछ दिनों के बाद उसने सुन्दर सी बच्ची को जन्म दिया। उसे देखते ही रणजीत की याद आई। बिल्कुल वही आंखें। रुलाई का गोला गले में अटक गया। लेकिन अब वह रोई नहीं। अपनी बच्ची का भविष्य इतना उज्जवल बनायेगी कि एक दिन इस समाज की रूढ़ियों, परम्पराओं की सलाखें तोड़कर नये समाज का निर्माण करेगी।

मानवी की विनोद के साथ काम करते-करते घनिष्ठता बढ़ गई, कब वह एक दूसरे के सम्पर्क में आये- एक अरसा बीत गया... फिर वे दोनों एक सूत्र में बंध गये....

विनोद की घर की दहलीज पर पांव रखते ही मानवी की आंखों से आंसूओं का बांध फूट पड़ा-

वे आंसू दर्द के नहीं थे

पछतावे के नहीं थे

अपना मन धोने के लिए थे

शायद मन्दिर में पांव रखने से पहले

मानवी को विनोद बिल्कुल अपने स्वप्न लोक का राजकुमार लगा जिसे वह भूल चुकी थी। जिसकी शक्ल किसी से नहीं मिलती थी पर आज उस राजकुमार ने उसे एक नया नाम नया शहर उसकी बेटी को नया नाम ''पूजा उपाध्याय'' दिया।

मानवी के लेख लगातार सारिका में छपते रहे। आज उसकी बेटी बहुत बड़ी जानी मानी पत्रकार पूजा-उपाध्याय।

मानवी की साधना पूरी हुई।

तालियों की गूंज से वह अपने अतीत से वर्तमान में लौटी। तालियाँ बजाने वाले हाथों में उसकी बेटी पूजा उपाध्याय और विनोद उपाध्याय के हाथ भी थे। और पत्रकार पूजा उपाध्याय मुख्य अतिथि के हाथों लोकापर्ण के लिए उसकी पुस्तकें 'हवेली', और 'सलाखें' पकड़ा रही थी। और फोटो ग्राफर तस्वीरें खींच रहे थे।

o o o

संपर्क : *25-ए, शास्त्री नगर, जम्मू।*

Regd. No. 28871/76

April-July, 2003

Published by the Secretary on behalf of J&K Academy of
Art, Culture and Languages, Jammu and Printed at Rohini Printers,
Kot Kishan Chand, Jalandhar City (Punjab)